* श्रीजानकीवल्लभोविजयते *

॥ श्रीहनुमतेनमः ॥

* श्रीमते भगवते रामानन्दाय नमः *

अथ श्रीमद् अग्रस्वामीजी-कृत

अष्टयाम

वन्देऽहं श्रीकृष्णदास पयोहारि पदाम्बुजम् ।
यस्यानुग्रहमात्रेण कालाष्टसेवनं मतम् ॥ १ ॥

सीय-लखन-मारुति-सहित रामचरण शिर नाय ।
अग्रस्वामि-कृत आह्निक देवगिरा सरसाय ॥ १ ॥
स्वमति-सरिस भाषा सरल अनुवादहिं मनलाय ।
करौं, सन्त-संतोषप्रद होय कृपा-बल पाय ॥ २ ॥

इस ग्रन्थ को प्रायः अष्टयाम कहते हैं। क्योंकि इसमें अष्टपहर की सेवा वर्णन की गई है। श्रीरामोपासकों को इष्ट की 'बाह्य सेवा' तथा 'मानसी सेवा' किस प्रकार करनी चाहिए, इस प्रसङ्ग की सूक्ष्म रीति से वर्णन करते हुए ग्रन्थ-कार श्रीमद् अग्रस्वामीजी महाराज अपने आचार्यवर अनन्त श्रीस्वामी कृष्णदासजी पयोहारी महाराज के युगल चरणारविन्दको नमस्कार-रूप, इसप्रकार, मङ्गलाचरण करते हैं:-

वन्देऽहमिति – मैं श्रीस्वामी कृष्णदासजी पयोहारी महाराजके चरण-कमल की वन्दना करता हूँ, सब साधनहीन होने पर भी केवल जिनके अनुग्रह मात्र से ही चेतन को अष्टकाल की सेवा का अधिकार प्राप्त हो सकता है। उन्हीं की कृपा से मैं अष्टकाल-सेवा का वर्णन करता हूँ। वह अष्टयाम-सेवा इस प्रकार है—१

निशान्तः प्रातः पूर्वाह्णं मध्याह्नमपराह्णकम् ।
सायं प्रदोषोनक्तं च कालाष्टकमिदं विदुः ॥ २ ॥

अर्थ—रात्रि का अन्त अर्थात् 'ब्रह्म मुहूर्त' के कुछ पहिले से एवं आधे ब्रह्म-मुहूर्त तक के समय को 'निशान्त कहते हैं, और ब्रह्ममुहूर्त से सूर्योदय के कुछ समय तक 'प्रातःकाल' कहलाता है। उसके बाद 'पूर्वाह्ण' एवं 'मध्याह्न' समय के दो भाग होते हैं और 'मध्याह्न' के बाद सूर्यास्त तक के समय को 'अपराह्ण' कहते हैं। सूर्यास्त होने पर 'सायं' और 'प्रदोष' ये दो भाग समयके होते हैं। सायंकाल ही को 'सन्ध्या' कहते हैं और 'प्रदोष' भी सन्ध्या के बाद ही तुरन्त आरम्भ हो जाता है। यह प्रमाण से सिद्ध है, यथा—'प्रदोषो रजनीमुखम्'। अतः 'सायं' एवं 'प्रदोष' ये दोनों समय बहुत थोड़े ही काल में बीत जाते हैं। परन्तु श्रीअग्रस्वामीजी के अभिप्राय से जबतक रात्रि के भोजन आदि का समय है, जबतक 'प्रदोष' ही है। पुनः शयन-समय से समस्त रात्रिको ग्रन्थकार ने 'नक्त' पद से ग्रहण

किया है। यही अष्टकाल है। अर्थात् मध्याह्न तक चार काल और मध्याह्न के बाद से रात्रिके चार काल। उन्होंने इसी प्रकार से काल का नियम स्थिर किया है। तात्पर्य यह है कि सेवा का यही समय है। अब, किस समय, कौनसी सेवा साधक को चिन्तनद्वारा करनी चाहिये,—इसको आगे वर्णन करते हैं ॥ २ ॥

स्नानवेषं निशान्ते च करोति रघुनन्दनः ।
प्रभाते मृगयालीलां गजाश्वरथपत्तिगैः ॥ ३ ॥

अर्थ—(अब किस काल में क्या लीला होती हैं, उसका वर्णन करते हैं) रघुकुल के आनन्ददाता श्रीरघुनन्दनजू निशान्त समय में 'स्नान' और 'शृङ्गार' करते हैं और प्रभात कालमें हाथी-घोड़ा-रथ-पैदल-चतुरङ्गिणी सेना के साथ 'मृगया' लीला करते हैं। अर्थात् चतुरङ्गिणी सेना को सजा कर, बन में जाकर, अपने प्रिय सखाओं को साथ लेकर, सानुज श्रीरघुनाथजी शिकार खेलते हैं। ऐसे जीव, जो सुकृत-समूह के प्रभाव से किन्तु तमोगुण के उद्रेक से क्रूर हिंसक योनि में, श्रीअयोध्याजी के बन में जन्म पाकर बन के छोटे छोटे जीवों को दुःख देते हैं, उनको तथा वृद्ध कृष्णासार ही को सुगति-प्रदानार्थ अपने पवित्र बाणों से मारते हैं। क्योंकि जिस राजा के राज्य में 'कृष्णासार' मृग अपनी मृत्यु से मरते हैं, उस राजा को

दोषका स्पर्श होता है—तद्यथा 'यस्यराष्ट्रे मृगःपुण्यः कृष्णा सारः स्वमृत्युना। म्रियते तस्य तद्राष्ट्रे बिप्लवः परिजायते' इति पाद्मे इस धर्म के पालनार्थ तथा उन जीवों के कल्याणार्थ आप मृगया-लीला करते हैं । ३

पूर्वाह्ले भोजनं निद्रा मध्याह्ने च सभागतः ।
नृत्यगीतादि वाद्यं च जल-क्रीडादिकं तथा॥ ४॥

अर्थ—फिर मृगया से लौट कर अनुज एवं सखाओं के साथ भोजन करते हैं। इतने में मध्याह्न का समय समाप्त हो जाता है । विश्राम के बाद सभा में जाकर नृत्य, वाद्य, गीत आदि देखते सुनते हैं । यह राजकीय व्यवहार है । तन्निमित्त उस रीतिका भी आप पालन करते हैं। दिन कुछ शेष रहने पर, दिन के अन्तिम पहर में, श्रीसरयूजी में स्वर्ण-मणि मण्डित नाव पर, अपने प्रियजनों को बैठाकर, आप जल क्रीड़ा करते हैं । ४

अपराह्ले पुनर्लीलामस्त्रशस्त्रादि-शिक्षणम् ।
सायंकाले द्यूतक्रीडां प्रेमोल्लास-महोत्सवम् ॥ ५ ॥

अर्थ—और अपराह्न में अस्त्र—शस्त्रादि की शिक्षा स्वयं ग्रहण करते हैं और इसी बहाने अपने प्रिय भ्राता तथा सखाओं को शिक्षा दिलाते हैं। साथ ही साथ जितने सेवक हैं, वे भी इसी प्रकार सब शिक्षा पाते हैं । यहाँ पर अपराह्न में ही जल क्रीड़ादि तथा अस्त्र शस्त्रादि की शिक्षा सम्पन्न होना समझ लेना चाहिए। आगे इसी ग्रन्थ में इनका

बिस्तारपूर्वक वर्णन किया जायगा। और सायंकाल में 'द्यूत-क्रीड़ा' अर्थात् 'चौपड़' 'शतरंज' आदि क्रीड़ा अपने सखाओं के साथ खेलते हैं। जैसे 'मृगया' निषेध होने पर भी, राजाओं के लिए, किसी अभिप्राय से, उसका विधान किया गया है, । उसी तरह, 'द्यूत-क्रीड़ा' को भी समझना चाहिए। और प्रेम का जिसमें उल्लास हो, अर्थात् आनन्द बढ़े, ऐसी क्रीड़ा नित्य करते हैं ॥ ५ ॥

पुनः स्नानं प्रदोषे च वेषादि भोजनं तथा।
नक्ते पर्यङ्कशयनं प्रियाप्रेमपरायणः ॥ ६ ॥

अर्थ-पुनः प्रदोष कालमें स्नान भृङ्गारादि करके भोजन करते हैं। और भोजनोत्तर रात्रि में श्रीप्रियाजू के प्रेम-परायण होकर पर्यङ्क पर शयन करते हैं। यह संक्षेपतः आठों कालकी सेवा वर्णन की गई है। इसी को विस्तार-पूर्वक आगे वर्णन करेंगे। यहाँ पर सूत्ररूप से प्रथमतः अष्ट याम का सेवा कह कर आचार्यप्रवर श्रीमद् अग्रस्वामीजी अब साधक के नियमों का प्रथम वर्णन करते हैं अर्थात् साधक को इस सेवाका अधिकार किस तरह प्राप्त होता है? किस तरह उसको सेवा में प्रवृत्त होना चाहिए? और उसके पहिले सेवा का अधिकारी कैसा होना चाहिए! यह दिखलाते हैं ॥ ६ ॥

श्रीसीतारामपादाब्जे सेवाया मानसी परा।
तथा ब्रह्ममुहूर्तादिरनन्यैर्व्यपदिश्यते ॥ ७ ॥

अर्थ—श्रीसीतारामजी के चरणकमलों की सेवा, सभी चेतनों को, भाग्य के उदय से तथा उनकी कृपा से, प्राप्त होती है। अर्थात् अनेक-जन्मार्जित पुण्य-सञ्चय से चेतन की वृत्ति भगवच्चरणों के सन्मुख होती है। तब प्रभु की निर्हेतुकी कृपा से उसका चित्त श्रीसीतारामजीकी चरण-सेवा में लगता है। तिसपर भी यह मानसी सेवा 'निरतिशय-परा' है' अर्थात् इसका अधिकारी उनका पूर्ण कृपापात्र ही हो सकता है जो ब्रह्म-मुहूर्त्त से लेकर अष्टयाम तक की सेवा में लगा रहता है। अतः जो श्रीसीतारामजी के अनन्य भक्त हैं अर्थात् श्रीसीतारामजी के चरणारविन्दों को छोड़ कर जिनके चित्त में दूसरे की गति भूल कर भी नहीं आती है, उन्हीं अनन्य रसिकों का इस सेवा में अधिकार है ॥ ७ ॥

ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय साधको रामतत्परः।
स्मृत्वा गुरुञ्च रामञ्च सीतां लक्ष्मणमेवच ॥ ८ ॥
हनुमन्तञ्च सुग्रीवमंगदञ्च बिभीषणम्।
भरतञ्चैव शत्रुघ्नं वाल्मीकिंसाधकोत्तमः ॥ ९ ॥

अर्थ—साधकों में उत्तम साधक को चाहिए कि ब्रह्ममुहूर्त में उठे। डेढ़ दण्ड रात्रि से सूर्योदय पर्यन्त 'ब्रह्ममुहूर्त' माना जाता है। भगवच्चरण-चिन्तक को चाहिए कि डेढ़ दण्ड

रात्रि रहते ही निद्रा को छोड़कर भजन में लग जावे। क्योंकि उस समय के शयन का निषेध श्रीभरतलालजी ने अपने शपथ-प्रसङ्ग में किया है कि जो कोई सूर्यास्त से एक पहर रात्रि के भीतर और डेढ़ दण्ड रात्रि के रहते एवं सूर्योदय के भीतर—इतने समय में—शयन करते हैं। उन्हें जो पातक लगता है वह उसको लगे जिसकी सम्मति से श्रीरामजी बन को गए होवें। तात्पर्य्य यह है कि उन दोनों सन्ध्याओं में सोने वाले को कभी भी श्रीरामजी में प्रेम नहीं होता और न कभी उसे श्रीरामजी का दर्शन ही प्राप्त होता है। अतएव ब्रह्ममुहूर्त में सोनेका सर्वथा निषेध है। साधन करने वाले को उचित है कि उस समय उठ जावे और श्रीरामजी में तत्पर हो जावे। प्रथमश्रीगुरुमहाराज का स्मरण करै पुनः श्रीजानकीजी तथा श्रीलक्ष्मणजी समेत श्रीरामजी का ध्यान करै ॥ ८ ॥

और श्रीरामजी के प्रिय पार्षद। अङ्गभूत। श्रीहनुमान् जी (सुग्रीवजी अङ्गदजी, विभीषणजी तथा श्रीभरत जी और श्रीशत्रुघ्नजी—इन सब को स्मरण करै। क्योंकि प्रेम की सीमा एवं श्रीरामजी के अनन्य भक्त श्रीहनुमान्जी हैं। श्रीरामजी में दृढ़ विश्वास रखने वाले तथा परम प्रेमी श्रीसुग्रीवजी हैं। श्रीरामजी को ही सर्वस्व मानने वाले बीर शिरोमणि श्रीअङ्गदजी हैं। दृढ़ बिश्वासी एवं श्रीराम जी के भरोसे निर्भय चित्तवाले भक्तराज श्रीविभीषणजी हैं भक्तों में अग्रगण्य श्रीरामजी के द्वितीय विग्रह विश्वभरण-

पोषण-कर्ता श्रीभरतलालजी हैं। और भागवतशिरोमणि श्रीभरतजी के दृढ़ भक्त श्रीसीतारामजी के परम सनेही शत्रुओं के संहारकर्त्ता श्रीशत्रुघ्नजी हैं। इसी प्रकार श्रीराम नाम के माहात्म्य के ज्ञाता एवं श्रीरामचरित्र के वक्ता महर्षि श्रीवाल्मीकिजी का स्मरण करै। तात्पर्य्य यह है कि जब जिनका स्मरण करै तब उनके गुण स्वरूप को पूर्णतया चित्त में धारण करले । इससे साधक को श्री सीतारामजी की सेवा का पूर्ण अधिकार और भक्ति का लाभ होता है ॥ ९ ॥

सुलोचन-सुभद्रौ च सुचन्द्र-जयसेनकौ।
वरिष्ठ-शुभशीलौ च अनङ्ग-रसकेतुकौ ॥ १० ॥
एतेऽष्टौ मंत्रिपुत्राःस्यू रामसेवापरायणाः।

अर्थ—(१) सुलोचनमणि (२) सुभद्रमणि (३)सुचन्द्र-मणि (४) जयसेनमणि (५) बरिष्ठमणि (६) शुभशीलमणि (७) अनङ्गमणि और (८) रसकेतुमणि—ये आठों काम को लज्जित करने वाले सुन्दर कुमार आठों मन्त्रियों के पुत्र हैं। श्रीरामजी के सखा हैं। सदा श्रीरामजी की सेवा में तत्पर रहते हैं।अतएव इन आठों का नित्य स्मरण करना चाहिए। इन सबके नामों में मणि शब्द की योजना रहस्य के ज्ञाता, उपासक-भक्तों के सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है, क्योंकि भक्ति-रहस्य के अन्तर्गत तत्त्वों को भक्त ही जानते हैं ॥ १० ॥

लक्ष्मणा श्यामला हंसी सुगमेति चतुर्विधा।
वंशध्वजा चित्ररेखा तेजोरूपेन्दिरावली ॥११॥
स्त्रियः पुंसस्स्वरूपेण सख्यमात्रेण सेविताः।
दास्यष्टौनिगमेप्रोक्ताःपुंसोरूपेण सेविता ॥१२॥
निगमा सुरसा वाग्मी शास्त्रज्ञा बहुमङ्गला।
भोगज्ञा धर्मशीला च नित्यसेवाविधायिका ॥१३॥

अर्थ-पुनः (१) श्रीलक्ष्मणाजी, (२) श्रीश्यामलाजी, (३) श्रीहंसीजी, (४) श्रीसुगमाजी, (५) श्रीवंश-ध्वजाजी (६) श्रीचित्ररेखाजी, (७) श्रीतेजोरूपाजी, (८) श्रीइन्दिरावलीजी, ये आठ सखी हैं। समय समयपर पुरुषरूप धारण कर श्रीसीतारामजीकी सेवा करती हैं। क्योंकि सख्यमात्र से सेवित हैं, अर्थात् शृङ्गार और सख्य रस, दोनों की पारस्परिक मैत्री है। इस कारण से जहाँ जैसा काम पड़ता है, वहाँ उसी तरह ये सेवामें परायण होती हैं। इसी कारण से 'सखा-सखी' शब्द भी दोनों में एकही समान है। पुनः आठ दासियां हैं, जिनका भेद रसोंके विधान करनेवाले शास्त्रों में वर्णन है। ये भी पुरुषरूप से, समय-समय पर श्रीसीता-रामजीकी सेवा करती हैं। इनके नाम ये हैंः—॥१२॥

(१) निगमाजी, (२) सुरसाजी (३) वाग्मीजी, (४) शास्त्रज्ञाजी, (५) बहुमङ्गलाजी, (६) भोगज्ञाजी, (७) धर्म-शीलाजी। चकार से विचित्राजी को लेना। ये सब नित्यही

सेवा-विधान करनेवाली हैं। इनका भी स्मरण नित्य करना चाहिए। इसका प्रमाण 'सुन्दरी-तन्त्र' में श्रीशतानन्दजी के प्रति श्रीसनत्कुमारजी के वचन में है॥ १३ ॥

ततो जलाशयं गत्वा स्नानं कुर्य्याद्विधानतः।
सरयूञ्च सरिच्छ्रेष्ठां ध्यात्वा सर्वं जलेषु च ॥ १४॥

अर्थ—प्रातःस्मरण के बाद साधक जलाशय में जाकर विधान के साथ स्नान करै। स्नान का विधान पटल-पद्धति में लिखा है। उसी विधानसे स्नान करै। जहाँ कहीं स्नान करै वहीं पर श्रीसरयूजी का, जो सब सरितों में श्रेष्ठ हैं। स्मरण करै अर्थात् यह विचार करै कि श्रीरामजी के नेत्रों से निःसृत करुणाप्रवाहवाली श्रीसरयूजीमें मैं स्नान कर रहा हूं ॥ १४ ॥

अयोध्यायान्निवासं च यत्रकुत्रस्थितोऽपिवा।
स्नानं कुर्वीतगायत्र्यामूर्धनि जलनिषेचनम्। १५।

अर्थ—श्रीरामोपासकों को चाहिए कि प्रारब्धकर्म वश जहाँ, जिस देश, जिस ग्राम में रहें, वहाँ पर अपना निवास श्रीअयोध्याजी में मानें अर्थात् अपने निवास-स्थल में ही श्रीअयोध्याजी को समझै। यह भावना करै कि मैं श्री-अयोध्याजीमें बसा हुआ हूँ। स्नान-समय गायत्री-मन्त्र से सिर के ऊपर कुंभकमुद्रा से जल-सिञ्चन करै ॥ १५ ॥

ततः संध्यां प्रकुर्वीत प्राणायामपुरःसरम् ।
तर्पणञ्च ततःकुर्य्याद्गायत्र्यावानिजेनवा ॥ १६ ॥

अर्थ—फिर, प्राणायामपूर्वक सन्ध्या करै। ततः गायत्री से अथवा निज मन्त्र से तर्पण करै। निजेन के स्थान पर मंत्रेण–का अध्याहार करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि सन्ध्या–समय श्रीराम गायत्री का जप करै और कुछ मंत्र का भी जप करै ॥ १६ ॥

ततो वस्त्रपरीधानं कुर्य्यान्मंत्री विधानतः ।
ऊर्ध्वपुंड्रादिकं सर्वं तिलकं नामपूर्वकम् ॥ १७ ॥

अर्थ—जिस साधक को श्रीरामजी का मंत्र प्राप्त हुआ है वह सन्ध्या के अनन्तर शुद्ध वस्त्र धारण करै। फिर द्वादश अङ्गो में श्रीरामजी के नाम स्मरण पूर्वक ऊर्ध्वपुंड्रादि सब तिलक करै ॥१७॥ इस श्लोक में परिधानं के जगह पर परीधानं कियागया है वह छन्दो भङ्ग मिटाने के वास्ते। अलङ्कार वालों का यह सिद्धान्त है अपिमाषंमषं कुर्यात् छन्दो भङ्गं न कारयेत् ।

मुद्रादिधारणं कार्यं नामाक्षर-विधानकम् ।
ततः प्रविश्य देवस्य गृहद्वार-विमोक्षणम् ॥ १८ ॥

अर्थ—उसी तिलक के समय श्रीरामजी के नामाक्षर

का विधान है जिस में ऐसी मुद्रा धनुर्बाण आदि जो राम नामाङ्कित हों धारण करे। इस प्रकार बाह्य चिन्हों को धारण करके अपने इष्ट देव श्रीरामजी के मन्दिर में प्रवेश करै और तीन ताली देकर मन्दिर के द्वारको खोलै। फिर मन्दिर में जाकर विधिपूर्वक पूजन करै। यह बाह्य पूजन का क्रम दिख लाया। अब मानसी पूजा का क्रम आरम्भ करते हैं अर्थात् ऊर्ध्वपुंड्रादि धारण करने के बाद साधक सावधानतापूर्वक बैठकर एकाग्रचित्त से प्रथम श्रीअयोध्याजी का ध्यान करै जैसा कि 'ध्यान मञ्जरी' में स्वयं श्रीअग्रस्वामीजीने वर्णन किया है ॥ १८॥

अयोध्यानगरश्चैव एकविंशति योजनम् ।
ललितकुण्डोद्भवं तत्र साकेतवनसन्निधौ ॥ १९ ॥

अर्थ–इक्कीस-योजन–व्यापी अयोध्यानगर का ध्यान करै। यद्यपि श्रीवाल्मीकीय रामायणमें बारह योजन लम्बी और तीन योजन चौड़ी अयोध्याजी की सीमा वर्णन की गई है और यहाँ पर इक्कीस योजन का विस्तार लिखा है तथापि आजकल की लौकिक प्रथा के अनुसार ८४ कोस की परिक्रमा श्रीअयोध्याजी की मानी जाती है। श्रीअग्रस्वामीजी की सम्मति में यही सीमा श्रीअयोध्यापुरी की है। उस श्री अयोध्यापुरीमें परम मनोहर श्रीललितकुण्ड है जिसका उल्लेख अशोकवन के भीतर 'ध्यान मञ्जरी' में हुआ है ॥ १९॥

तन्मध्ये मन्दिरं रम्यं चतुर्द्वारं मनोरमम् ।
रत्नवेदी च तन्मध्ये पुनः पद्मदलाष्टकम् ॥२०॥

अर्थ—उसी अशोकबनके मध्य एक कल्प वृक्ष है—यद्यपि सभी वृक्ष देव-तरुवरों को लज्जित करनेवाले हैं, तथापि, यह विलक्षण है। उस कल्पवृक्ष के पासही अधोभाग में मणिमय मनोरम मण्डप है, मन्दिर बना हुआ है, जिसकी चारों-दिशाओं में द्वार हैं। उसके बीच में रत्नमयी वेदी है, उस वेदी के मध्य सिंहासन है, जिसके आठ पाये हैं:—(१) धर्म, (२) ज्ञान, (३) वैराग्य, (४) ऐश्वर्य्य, (५) अधर्म, (६) अवैराग्य, (७) अज्ञान और (८) अनैश्वर्य्य,—येही आठ पाये हैं, अर्थात् आधार-स्तम्भ तंत्र-शास्त्र में लिखे हैं। उस सिंहासन के मध्य मणिमय अष्टदल-कमल है। कमलके मध्य कर्णिका है। उस कर्णिका में प्रथम मकार चन्द्रबीज है, पुनः अकार भानुबीज है, पुनः ऊपर के भाग में रकार वह्नि (अग्नि)-बीज है। उसी अग्निमण्डल में श्रीसीतारामजीका निवास है, यथा—"श्रीसीतारामौतन्मयावत्र पूज्यौ अस्यार्थः रेफो ग्निबीजः।" इस वैदिक प्रमाणसे रेफ में श्रीसीतारामजीका ध्यान करना लिखा है। और भी "वह्निमध्येस्मरेद्रूपं"—इसमें भी वह्नि-मण्डल में ही श्रीसीतारामजी बिराजमान हैं। वह सूक्ष्म वह्नि-मण्डल उष्ण नहीं है, किन्तु, कर्णिका ही में चन्द्र, भानु, अग्नि, ये तीन मुद्रायें वर्णन की गई हैं॥२०॥

सीतारामौसमासीनौ सख्यष्टक-सुसेवितौ ।
चामरैःछत्र व्यजनैस्ताम्बूलैः पुष्पमाल्यकैः ॥२१॥

अर्थ—उसी कर्णिका पर आठ सखियों से सेवित श्री-सीतारामजी विराजमान हैं। किसी पुस्तक में, "सखिदास सुसेवितौ,"—यह पाठ भी है। इससे सखी, सखा, दास, इन सब से सेवित श्रीसीतारामजी विराजते हैं। दक्षिण में चमर, पश्चिम में छत्र, उत्तर में, व्यजन लिए श्रीभरतादि भ्राता तथा अन्य सेवक-परिकर सब ताम्बूल, पुष्पमाला इत्यादि लिये सेवा कर रहे हैं। सखियों की सेवा मूल में स्पष्ट है, जैसेः—

ईशाने लक्ष्मणा ज्ञेया पूर्वे च श्यामला तथा ।
आग्नेयेऽधिष्ठिताहंसीयाम्येचसुगमा तथा ॥२२॥

अर्थ—ऊपर आठ सखियों से सेवित कह आये हैं, यहाँ उनका क्रम दिखलाते हैं। ईशान कोण में श्रीलक्ष्मणाजी हैं, पूर्व में श्रीश्यामलाजी हैं, अग्निकोण में श्रीहंसीजी हैं और दक्षिण में श्रीसुगभाजी हैं ॥२२॥

वंशध्वजा च नैर्ऋत्ये चित्ररेखा च वारुणे ।
तेजोरूपा च वायव्ये इन्दिरावल्युत्तरेस्मृता ॥२३॥

अर्थ—नैर्ऋत्यकोण में श्रीवंश-ध्वजाजी हैं, पश्चिम में श्रीचित्ररेखाजी हैं, वायव्यकोण में श्रीतेजोरूपाजी

हैं और उत्तर में श्रीइन्दिरावलीजी हैं। इस प्रकार, सेवा का वर्णन करके अब, कुञ्जों के स्थानों का कथन करते हैं कि किस दिशा में किसका कुञ्ज है ॥२३॥

उत्तरे ललितकुण्डस्य लक्ष्मणाकुञ्ज नामकम्।
पूर्वेतु श्यामलाकुञ्जं दक्षिणे हंस्यधिष्ठिता ॥२४॥

अर्थ—उत्तर में, सेवा के सब उपकरणों से युक्त, परम रम्य श्रीलक्ष्मणाजी का कुञ्ज है। इसी तरह ललितकुण्ड से पूर्व श्रीश्यामलाजी का कुञ्ज है, और ललितकुण्ड से दक्षिण श्रीहंसीजी का कुञ्ज है ॥२४॥

पश्चिमे सुगमाकुञ्जं नानापुष्पैःसुमण्डितम्।
पश्चिमोत्तरयोर्मध्ये वंशध्वजा च वैस्मृता ॥२५॥

अर्थ—पश्चिम में नाना पुष्पों से मण्डित श्रीसुगमाजी का कुञ्ज है, पश्चिम और उत्तर के बीच में अर्थात् वायव्यकोण में श्रीमती वंशध्वजाजी अपने कुञ्ज में विराजती हैं ॥२५॥

उत्तरपूर्वयोर्मध्ये चित्ररेखा विराजते।
पूर्वदक्षिणयोर्मध्ये तेजोरूपा प्रतिष्ठिता ॥२६॥

अर्थ—इसी तरह, उत्तर-पूर्व के मध्य ईशानकोण में श्रीचित्ररेखाजी हैं और पूर्व-दक्षिण के मध्य अग्निकोण में श्रीतेजोरूपाजी अपने कुञ्ज में प्रतिष्ठित हैं अर्थात् विराजती हैं ॥२६॥

याम्यवारुणयोर्मध्ये इन्दिरावलिकुंजकम् ।
नाम स्थानमिति प्रोक्तं साधकः परिचिन्तयेत् ।।२७।।

अर्थ–दक्षिण और पश्चिम के मध्य अर्थात् नैर्ऋत्य-कोण में श्रीइन्दिरावलीजी हैं। इसी तरह, सखियों के नाम और उनके स्थान (कुञ्ज) कहे गये हैं। साधक इनका चिन्तन एकाग्रचित होकर करें ।।२७।।

तथैव माधवीकुण्डोत्तरे कुञ्जे सुलोचनः ।
सौभद्रं कुञ्जमीशाने तथा पूर्वसुचन्द्रकः ।।२८।।

अर्थ–अब आठ सखाओं के कुञ्जों का वर्णन करते हैं। जैसे, ललितकुण्ड के आठों तरफ़ आठ सखियों के कुञ्जें हैं, वैसे ही, माधवीकुण्ड के आठों तरफ़ आठ सखाओं के कुञ्जें हैं। माधवीकुण्ड के उत्तर कुञ्ज में श्रीसुलोचन जी हैं, ईशानकोण में श्रीसुभद्रजी का कुञ्ज है और पूर्व में श्रीसुचन्द्रजी का कुञ्ज है ।।२८।।

आग्नेये जयसेनस्य वरिष्ठस्यतुदक्षिणे ।
नैर्ऋत्ये जयशीलस्य वारुणेऽनङ्गजित्स्थितः ।।२९।।

अर्थ–अग्निकोण में श्रीजयसेनजी का कुञ्ज है, दक्षिण में श्रीवरिष्ठजी का कुञ्ज है नैर्ऋत्यमें श्रीजयशीलजी का कुञ्ज है और पश्चिम में श्रीअनङ्ग-जित्‌जी अर्थात् जिनको श्री-अनङ्गमणि कहते हैं, वे इस कुञ्ज में स्थित हैं ।।२९।।

वायव्ये रसकेतुश्च स्वसेवायां च तत्पराः ।
अष्टौ सखायः संप्रोक्ता रामानुग्रहकांक्षिणः ॥३०॥

अर्थ—वायव्यकोण में श्रीरसकेतुजी का कुञ्ज है । इस प्रकार, अपने-अपने कुञ्जोंमें आठों सखा रहते हैं । समय-समय पर अपनी-अपनी सेवा में तत्पर रहते हैं । इस तरह, आठ सखा श्रीरामजीके कहे गये हैं, जो श्रीरामजी की सेवा ही की कांक्षा रखते हैं । तात्पर्य्य यह है कि श्रीराम-जी की सेवा को छोड़कर किसी भी सुख की कांक्षा इन सब के चित्त में नहीं होती ॥३०॥

अयोध्यान्तः पुरे रम्ये सरयूतटमास्थिते ।
अशोकवनिकामध्ये सुरद्रुमलताश्रये ॥३१॥

अर्थ—अयोध्यापुरी के मध्य में परम रमणीय श्री-सरयूतट में स्थित अशोकवनिका के मध्य, जहाँ पर अनेक तरह के देव-वृक्ष और लताओं का आश्रय है, अर्थात् चारों तरफ अति रमणीय श्रीअयोध्यापुरी है और मध्य में श्री-अशोकवाटिका हैं, जिसमें अनेक प्रकार के चंपतार, मंदार, कल्पवृक्ष—(ये देव-वृक्ष) शोभित हैं, जिनके ऊपर मनोहर, सर्वमनोरथ पूर्ण करनेवाली, लतायें चढ़ी हुई हैं ॥३१॥

चिन्तामणिमहापीठे लसत्काञ्चनभूतले ।
सर्वतः काञ्चनीभूमिर्दिव्योद्यान समुद्यता ॥३२॥

अर्थ—और चिन्तामणिमय महापीठ तथा स्वर्णमयी भूमि है, जो दिव्य उद्यानों से समुदित है। इसका विस्तारपूर्वक वर्णन वाल्मीकीयरामायण के उत्तरकाण्ड में है। ॥३२॥

प्राकारैश्चैव विमलैर्बहुरत्नसमन्वितैः।
तन्मध्ये नगरी दिव्या सायोध्येति प्रकीर्तिता॥३३॥

अर्थ—बहुरत्नों से जटित सुन्दर प्राकार हैं, अर्थात् अनेक प्रकार की मणियों से शोभित प्राकार बने हैं उन प्राकारों के मध्य में दिव्य नगरी है, जो श्रीअयोध्या नाम से वेदों में प्रकर्षरूप से कीर्तित है, यथा—"देवानां पूरयोध्या" इत्यादि श्रुतियों में जो वर्णन की गई है ॥३३॥

मणिकाञ्चनचित्राढ्या सुप्राकारैस्तुनिर्मिता।
चतुर्द्वारसमायुक्ता रत्नगोपुरसंयुता॥३४॥

अर्थ—वह पुरी मणिमय तथा काञ्चन के विचित्र प्राकारों से निर्मित है और वह पुरी, चारों दिशाओं में चार द्वारों से युक्त है। द्वारों के नाम "वैजयन्त" आदि वाल्मीकीय रामायण में प्रसिद्ध हैं। और वे दरवाजे रत्नमय गोपुर से युक्त हैं॥३४॥

अन्तःपुरन्तु देवस्य मध्ये पुर्य्याः मनोहरम्।
मणिप्राकार संयुक्तं वरतोरणशोभितम्॥३५॥

अर्थ—उस पुरी के मध्य, पूर्णप्रकाश, विचित्रक्रीड़ायुक्त

देव श्रीरामजी का अन्तःपुर है, जो मणिमय प्राकार से युक्त है और श्रेष्ठ तोरणों से शोभित है ॥३५॥

तन्मध्ये मण्डपंदिव्यं राजस्थानं महोत्सवम् ।
तन्मध्ये परमोदारः कल्पवृक्षो वरप्रदः ॥३६॥

अर्थ—उस अन्तःपुर के मध्य महोत्सवमय आनन्दमय राजस्थान दिव्य मण्डप है। उस मण्डप के मध्य चिन्तक के सब मनोरथ पूर्ण करने में परमउदार, सब तरह के वरदान देने वाले कल्प-वृक्ष हैं ॥३६॥

वज्राङ्गयष्टिकः श्रीमान्करुणाङ्कुरमूलकः ।
षड्रसस्य च सुस्रावी वांछितार्थ समावृतः ॥३७॥

अर्थ—वज्राङ्गमय उसकी शरीर-यष्टि है, अर्थात् हीरामणिमय उसके शरीर की सब बनावट है, इसी से परम श्रीमान् है। और करुणागुण विशिष्ट उसका अंकुर और मूल है। तात्पर्य्य यह है कि उस कल्पवृक्ष का समुद्भव श्रीरामजी की करुणा से ही है। और पञ्चरस एवं छठवां सब में रहनेवाला प्रेमरस का उसमें सुस्राव है अर्थात् प्रेम रस मानो चू रहा है तथा साधक के वाञ्छितार्थ से समावृत है, अर्थात् ध्यान-कर्त्ता जिस वस्तु की चाह करता है, उसको वह शीघ्रही प्रदान करता है ॥३७॥

दानस्वभाव सततंस्थितिर्मौनगतिर्जयः ।
इन्द्रनीलमणिप्रख्यो नित्यः सूक्ष्मसुपत्रकः ॥३८॥

अर्थ—यह निरन्तर दान-स्वभाव है। भाव यह कि जो जिस मनोरथ से उस कल्प-वृक्ष का ध्यान करता है, उसके देने का इसका निरन्तर स्वभाव है। यह सदा एक जगह पर स्थित रहता है और इसकी मौनगति है। यह मुखर नहीं है कि बकवाद किया करे। इसीसे इसके ध्यान से, साधक मन की गति पर विजय प्राप्त कर सकता है। और इन्द्र-नील-मणि के समान उसका वर्ण है और छोटे-छोटे सुन्दर मनोहर उसके पत्र हैं ॥३८॥

धर्मार्थकाममोक्षादि-स्कंध-शाखा-समुच्छ्रितः ।
प्रवाल-मञ्जरीरम्यश्चानन्द-पुष्पसंचयः ॥३९॥

अर्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्षादि फल उसके स्कंधशाखा हैं, जिनसे वह सम्यक् प्रकार उन्नति को प्राप्त हो रहा है। प्रवाल के पत्र और मञ्जरियों से अति रमणीय है और आनन्दमय पुष्पों का उसमें संचय है ॥३९॥

चिन्तामणिफलोत्पत्तिः करोतु वांछितंहिवः ।
सरिताजलकल्लोलविलोलनलिनीकुलम् ॥४०॥

अर्थ—चिन्तन करते ही वांछितफल देनेवाली चिन्तामणि, जिससे सब फलों की उत्पत्ति है, वेही उसके फल हैं

और जो सब फलों को देनेवाली हैं, उस चिन्तामणिमय वह कल्प-वृक्ष, हे साधको ! आपके मनोरथ पूर्ण करनेवाला होवै, यह श्रीअग्रस्वामीजी आशीर्वाद देते हैं। उसी कल्प-वृक्ष के निकट सरिद्वर श्रीसरयूजी जल कल्लोल-विलोलित अर्थात् चंचल हैं और कमल-कुल से अति रमणीय हैं ॥४०॥

तुलसी-पुष्पसौरभ्य-नित्योत्सव-सुमण्डितम् ।
वासन्तीचम्पकाशोक-पारिजातमहोद्यतम् ॥४१॥

अर्थ—तथा, तुलसी-पुष्पों के सौरभ से सुवासित, नित्य उत्सव से मण्डित, वासन्ती लताओं से वेष्टित एवम् चम्पक, अशोक और पारिजात आदि महावृक्षों से शोभित हैं॥

मालतीयूथिकाम्भोजकुन्द-मन्दार-सेवितम् ।
केतकीमल्लिकोद्भासत्कदम्बतरु-मण्डितम् ॥४२॥

अर्थ—और भी अनेक तरह के लताओं अर्थात् मालती, जूही, कमल, कुन्द, मन्दार आदि (प्रफुल्लित वृक्षों) से सेवित, केतकी, मल्लिका आदि से उद्भासित और फूले हुए कदम्ब वृक्षों से मण्डित वह वन है ॥४२॥

कदम्बकाननेरम्ये लतामण्डपमध्यगे ।
मत्त भ्रमर गुंजार कोकिलारव-सङ्कुले ॥४३॥

अर्थ—उस परम रमणीय कदम्ब वन में, जो लता मण्डपों के मध्य अवस्थित है, भ्रमरों का गुञ्जार

हो रहा है और कोकिलाओं के मनोहर शब्दों से वह संकुल हो रहा है ॥४३॥

वर्हालिसारिकाश्रेष्ठशब्दिते शुककूजिते ।
वृक्षगुल्मघनच्छायाकुञ्जपुञ्जमधुस्रवे ॥४४॥

अर्थ—(वह वन) मयूर, भ्रमरी, सारिका,—और शुक इन सब के मनोहर शब्दों से मण्डित है, वृक्ष-गुल्मों की सघन छाया से सम्पन्न है। अनेक तरह के विभाग सहित कुञ्जों का समूह शोभित है, जिसमें सुगन्धित मधुका स्राव हो रहा है, अर्थात् वृक्षों से मधु चू रहा है ॥४४॥

नृत्यन्मयूरनिकरे नानापक्षिविराजते ।
सरयूजलकल्लोलसङ्गमारुतसेविते ॥४५॥

अर्थ—नृत्य करते हुये मयूरों का समूह शोभा दे रहा है। और भी नाना तरह के पक्षियों से विराजित है। श्री सरयूजलके कल्लोल से मिले हुये पवन से सेवित है ॥४५॥

प्रफुल्लकमलप्रख्ये मरन्दामोदमेदुरे ।
तत्रप्रसूनशयने समासीनान्तु जानकीम् ॥४६॥

अर्थ—सौरभ (आमोद) और मकरन्द से भरे खिले हुए कमल के समान ही (ऐसे) कमलदलों की शय्या पर (जिनमें सरोवर के नवविकसित कमलों की पंक्तियों से तनिक भी अन्तर नहीं है, जो तनिक भी नहीं मुर्झाए हैं) उसपर श्रीविदेहराजनन्दिनीजू विराजी हुई हैं। ऐसा चिन्तन करें॥

तांविद्युन्निकराभासां सीमन्तापीडकुन्तलाम् ।
सम्पूर्णचन्द्रवदनां चारुहासाधरप्रभाम् ॥४७॥

अर्थ- वे समूह बिजली के समान प्रकाशित हो रही हैं। और सौभाग्य के सूचक सीमन्त, (जिसे मांग कहते हैं, उससे) जिनके केश बहुत सुन्दर शोभित हो रहे हैं। सम्पूर्ण चन्द्रमा के समान, सर्वाह्लादक, तापहारी, जिनका वदन है ऐसी श्रीरामप्राणवल्लभाजू मनोहर, परमसुन्दर, अति पवित्र, सोहावनहास युक्त अधरों की प्रभा से शोभित हैं ॥४७॥

सुदन्तीम्पद्मपत्राक्षीं सुनासां चपलभ्रुवाम् ।
स्वर्णकुण्डलनिर्भातकपोलयुगलश्रियम् ॥४८॥

अर्थ-हास के समय दन्त-पंक्ति की छटा सब भवन में छा रही है, इसीसे सुदन्ती कहा। पद्मपत्र के समान सुन्दरसुखद चितवनवाले युग्म नेत्र हैं, शुक तुण्डक विनिन्दक नासा है, प्रिय के साथ कुछ रसमय भाव भरे चपल भ्रू होरहे हैं और स्वर्ण-कुण्डलों से विशेष रूप से युगुल कपोलों की श्री प्रकाशित हो रही है ॥४८॥

नानामणिगणाकीर्णांहारावलिविराजिताम् ।
प्रफुल्लकमलप्रख्यमृदुपादोपशोभिताम् ॥४९॥

अर्थ-तथा नाना प्रकार के बहुमूल्य मणिगणों से पूर्ण

हारों की पंक्ति से विराजित हैं एवं नवीन फूले हुये कमलों के समान मृदु चरणारविन्दों से अतिशोभित हो रही हैं ॥४६॥

नानाऽलङ्कारसंयुक्तां सर्वसौन्दर्य्यशालिनीम् ।
आश्लिष्टाङ्गींचहरिणा सर्वाङ्गी रामवल्लभाम् ॥५०॥

अर्थ—और भी नाना तरह के अलङ्कारों से युक्त हैं, भाव यह कि स्नेह भरी सखियों ने अपनी रुचि से नाना तरह के विचित्र शृङ्गार किये हैं और स्वतः आप भी सर्व सौन्दर्य्यशालिनी हैं, अपने आश्रितों के सब तरह के क्लेशों को हरनेवाले श्रीरामजी से आश्लिष्ट हैं (अर्थात् प्रातःकाल जागकर दोनों प्रिया-प्रियतम, स्नेह में भरे, परस्पर मिले हुए हैं—नायिका-शिरोमणि आपका मुग्ध भाव ही, सब शोभा का तथा गुणोद्रेक के गौरव का सूचक है ।) ऐसी श्रीरामवल्लभाजू श्रीविदेहराजनन्दिनीजू का, साधक को चिन्तन करना चाहिए ॥५०॥

रतिलीलासमाकृष्टस्फुरदलकसंयुताम् ।
ध्यात्वादेवीं वरारोहां साधकस्तत्परोभवेत् ॥५१॥

अर्थ—परस्पर की स्नेहमयी रतिलीला से समाकृष्ट होने के कारण अलकें बिथुर रही हैं, उनसे संयुक्त वरारोहा देवी, दिव्यगुण लीला-सम्पन्ना श्रीरामवल्लभाजू का ध्यान कर साधक अपनी सेवा में तत्पर होवे। अर्थात् आचार्य्य

से प्राप्त हुए भाव के अनुसार तीन दण्ड रात्रि के रहते ही साधक यह चिन्तन करै कि तीन दण्ड रात्रि के शेष रहते राजद्वार पर दुन्दुभी का शब्द होता है, (जिसको सुनकर) सभी धार्मिक जनता उठकर प्रातःकाल के धार्मिक कार्य में तत्पर हो जावै, यह सूचना देते हुए महाराज चक्रवर्तीजी की आज्ञासे वह राज दुन्दुभी राजद्वार पर बजती है। उसकी ध्वनिको सुनकर श्रीकनक-भवन के प्रथम आवरण में रहने वाले गायकगण भी जागकर मधुर स्वर से मृदङ्ग, बीणा, सितार, तम्बूरा आदि लेकर गान करने लगते हैं, इसी तरह वंश-प्रशंसक वन्दीजन भी अपने अपने काव्यों से सेवा करने लगते हैं। और भीतर अन्तःपुर में, उस ध्वनि को सुनकर सब परिकर गण निद्रा को छोड़कर अपनी-अपनी सेवा में सावधान होते हैं। उसी समय किसीने आकर अपने को भी उठाया और दन्तधावनादि सब कृत्यों से निवृत्त एवं सुसज्जित करके ले चला। आचार्य्य से मिलकर साधक, प्रातः समय, सेवा में उपस्थित होता है। उसी समय का (यह दिव्य-दम्पति का) ध्यान वर्णन किया गया है। वह अपने-अपने आचार्योपदेशानुकूल रस के अनुसार भावना करै ॥ ५१ ॥

लक्ष्मणा श्यामला हंसी सुगमाश्च चतुर्विधाः।
स्त्रियःपुंसः स्वरूपेण सख्यमात्रेण सेविताः ॥ ५२ ॥

अर्थ-पुनः पूर्व में कहे हुए प्रकरण को वर्णन करते हुए कहते हैं कि श्रीलक्ष्मणाजी, श्रीश्यामलाजी, श्रीहंसीजी और श्रीसुगमाजी, ये चार प्रकार की परम चातुर्यवाली सखियाँ, समय-समय

पर, पुरुष-स्वरूप को धारण कर, अर्थात् कभी स्त्रीरूप से कभी पुरुषरूप से सेवा करती हैं। ये सब सख्यमात्र से सेवित हैं, अर्थात् शृङ्गार सख्य की मैत्री है इस कारण जिस समय जैसा काम पड़ता है उस समय वैसी सेवा करती हैं। वस्तुतः चेतन जीव न स्त्री है न पुरुष है, वह सच्चिदानन्द-स्वरूप श्रीरामजीकी सब विधि सेवा का अधिकारी है, जैसा कार्य तथा रुचि होती है, वैसा होकर सेवा करता है। महर्षि अगस्त्यजी अपनी संहिता में लिखते हैं। यथा—'यादृशीरामवाञ्छास्यात्तादृशाहिभवन्तिते अर्थात् जैसी प्रभु की इच्छा होती है, वैसाही स्वरूप धारण कर दिव्य दम्पति श्रीसीतारामजी की सेवा वे करते हैं। यही जीव का कर्तव्य है। पुनः ब्रह्मसूत्र एवं श्रुति में ऐसा लिखा है यथा—'संपद्याविर्भावः' इति ब्रह्मसूत्रे। 'एवमेवैष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थायपरं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेनरूपेणाभिनिष्पद्यते' एष आत्माअपहत पाप्माविजरोविमृत्युर्विशोकः अपिपासोविजिघत्सः सत्यकामः सत्यसंकल्पः'। इति श्रुतिः। अर्थात् यह जीवात्मा मुक्त होने की योग्यता प्राप्त करने पर इस शरीर से निकलकर परमज्योति परमात्मा को प्राप्त होकर अपने रूप से प्रकट होता है। तब इस जीवआत्मा में परमात्माके ये आठ गुण प्राप्त हो जाते हैं—परमात्मा के अष्टगुण-(१) पापों से रहित होना (२) जरा से रहित होना (३) मृत्यु से रहित होना (४) शोक से रहित होना (५) पिपासा से रहित होना (६) भोजनादि इच्छा से रहित होना (७) सत्य-काम और (८) सत्य-संकल्प

इत्यादि गुण प्रकट होते हैं। जिससे वह जो संकल्प करता है, उसी को प्रकट कर लेता है। एक, तीन, दस, सौ, हजार एवं अनन्त रूप धारण कर सकता है। यथा–'एकधा भवति' दशधा त्रिधा, शतधा, सहस्रधा' इति श्रुतिः। तात्पर्य यह है कि सत्य संकल्प होने से जैसा चाहै जिस अवस्था वाला एवं जिस प्रकार का चाहे अपना रूप बना सकता है ॥ ५२ ॥

दास्यष्टौ निगमे प्रोक्ताः पुंसोरूपेण शोभिताः।
निगमा सुरसा वाग्मी शास्त्रज्ञा बहुमङ्गला ॥ ५३ ॥

अर्थ—इसी तरह रस-विधायक निगम शास्त्र में कही हुई आठ दासियाँ भी पुरुष रूप से शोभित होकर सेवा करती हैं। उनके नाम ये हैं-श्रीनिगमाजी। श्रीसुरसाजी। श्रीवाग्मीजी। श्रीशास्त्रज्ञाजी। श्रीबहुमङ्गलाजी ॥ ५३ ॥

भोगज्ञा-धर्मशीला च नित्य-सेवा-विधायिकाः।
पुनः सेवाविधिंध्यात्वा प्रेमानन्देन साधकः ॥ ५४ ॥

अर्थ-श्रीभोगज्ञाजी और श्रीधर्मशीलाजी—ये आठों नित्य सेवा का विधान करने वाली हैं। यहाँ इनके पुनः वर्णन करने का तात्पर्य्य श्रीअग्रस्वामीजी का यह है कि सब रसों से प्रभुकी सेवा करने का अधिकारी चेतन जीव है। इस तरह से एवं प्रेमानन्द से सेवा-विधि का साधक ध्यान करै। अब प्रस्तुत प्रसङ्ग को पुनः वर्णन करते हैं ॥ ५४ ॥

प्रवेष्टितं सखीयूथैर्दासीवृन्दैः सुवेष्टितम् ।
तंविधिंहृदयेध्यात्वा सेवांकुर्य्याद्यथोचिताम् ॥ ५५ ॥

अर्थ-सखीवृन्दों से और दासी वृन्दों से सुवेष्टित श्रीसीतारामजी का ध्यान कर उस विधि को अच्छी तरह हृदय में बैठाते हुए अपने स्वरूप के अनुसार उचित सेवा करै ॥ ५५ ॥

जानक्यासहितंरामं नित्यंसेवेत्तु मानसे ।
इत्यादि चरितं दिव्यं ध्यानंकृत्वा सुसाधकः ॥ ५६ ॥

अर्थ-श्रीजनकराजकुमारीजू के सहित श्रीरामजी का मन में ध्यान करते हुए नित्य सेवा करै अर्थात् मानसी सेवा में कहे हुए दिव्य चरितों का ध्यान कर साधक वाह्य सेवा का प्रारम्भ करै। इस तरह मानसी सेवा का वर्णन कर अब पुनः बाह्य सेवा का वर्णन करते हैं ॥ ५६ ॥

शङ्खादि पाद्यं कृत्वा तु जयशब्दं च नामभिः ।
राममूर्तिश्च शयनाद्रात्रौ निद्राविमोचनाम् ॥ ५७ ॥

अर्थ-शङ्ख आदि पार्षदोंका पूजन कर अर्घ्य पाद्यादि पात्रों को चन्दन तुलसी आदि से युक्त कर' जल को पञ्चपात्रों में रख कर और आचमनी से जल लेकर अपने ललाटपर्यन्त लेजावै और ॐ विरजे आगच्छ आगच्छ' यह कहकर आचमनी के जल को थोड़ा-थोड़ा पाँचो पात्रोंमें छोड़ दे। पुनः सुरभी मुद्रा और मत्स्यमुद्रा से पाँचों को वेष्टित कर देवै। फिर प्रभु के नामोंका उच्चारण करते हुए 'जय' शब्द बोल कर रात्रि में शयन कराई

हुई श्रीसीतारामजी की मूर्ति का उत्थापन करै । यह निद्राविमोक्षण है ॥ ५७ ॥

प्रक्षाल्यमुखपद्मं च पादुकाश्च समर्पयेत् ।
गण्डूषार्थं जलंदत्वा कर्पूरादि सुवासितम् ॥ ५८ ॥

अर्थ—फिर मन से अथवा प्रत्यक्ष मूर्ति को दन्त-धावन कराकर मुख कमल का प्रक्षालन करै । वह क्रम इस प्रकार से है कि शयन कुञ्ज से वल्लभ कुञ्ज में जाने के लिए स्वर्णमयी रत्नों से जटित दिव्य पादुका युगल सरकार को समर्पण करै और कर्पूरादि से सुगन्धित जल को दोनों प्रभु के सामने स्थापित करै । वह जल गण्डूषार्थ अर्थात् कुल्ला करने के लिये समझना चाहिए ॥ ५८ ॥

रत्नपीठोपरिन्यस्य दन्तकाष्ठं समर्पयेत् ।
द्वादशांगुलमानं च क्षीरवृक्ष समुद्भवम् ॥ ५९ ॥

अर्थ-वल्लभ-कुञ्ज में रत्नमय सिंहासन पर दोनों प्रभुओं को विराजमान कराकर दन्तकाष्ठ समर्पण करै अर्थात् शुभ-काष्ठ की दन्त धावन कूंची बनाई हुई, सुगन्धित मसाला से युक्त द्वादश अंगुल प्रमाण दूधवाले वृक्षों की दन्त-धावन समर्पण करै ॥ ५९ ॥

रदजिह्वाविशुद्धिं च कारयेत्सुजलैः पुनः ।
वस्त्रप्रावर्तनं कार्यं सुगन्धितैलमर्दनम् ॥ ६० ॥

अर्थ—उसी से दन्त और जिह्वा की शुद्धि युगलसरकार

को करावै। पुनः सुन्दर सुगन्धित एवं पवित्र जल से मुख आदि का मार्जन करावै। फिर वस्त्र का प्रावर्तन करै, अर्थात् मनमें यह भावना करै कि मुख का प्रोक्षण कर रहे हैं। पुनः सुगन्धित तैल से मूर्ति के अङ्गों का मर्दन करै। और मानसी सेवा में इस प्रकार भावना करै कि दोनों सरकार स्नान-कुञ्ज में पधारे हैं। वहां पर वस्त्रों को उतार कर अङ्गों में केसर, कर्पूर, अतर, चिरौंजी, सरसों इन सबको पीस कर उपटन लगाया गया फिर सुगन्धित तैल से अङ्गों का मर्दन हुआ ॥ ६० ॥

सुवासितजलैः स्नानं दध्यामलक संयुतम्।
अङ्गसम्मार्जनं वस्त्रैर्वस्त्रयुग्मं ततोददेत् ॥ ६१ ॥

अर्थ-अपने रसके अनुकूल दोनों सरकार को पृथक् पृथक् अपनी अपनी कुञ्जों में अथवा एकही साथ स्नान कराया गया, पूर्व में दधि-आमलक मलकर इसको स्नान के प्रथम समझना चाहिए। स्नान के बाद सुन्दर कोमल वस्त्रों से युगलसरकार के अङ्गों का मार्जन होता, है अर्थात् अङ्ग पोंछ दिये जाते हैं। फिर, दो वस्त्र समर्पण करै ॥ ६१ ॥

आदर्शे वीक्षितमुखं तिलकादि प्रकल्पनम्।
केशसम्मार्जनंकुर्य्यात् पूजाकरणमुत्तमम् ॥ ६२ ॥

अर्थ-पुनः शृङ्गार-कुञ्ज में लेजाकर आदर्श (दर्पण) में मुखावलोकन और तिलक आदि की प्रकल्पना करै। उत्तम उपकरणों को समर्पण करै ॥ ६२ ॥

वेषंकुर्य्यात्ततोमन्त्री दिव्यभूषणमण्डितम् ।
ततोनीराजनंकुर्य्यान्मङ्गलारोप पूर्वकम् ॥ ६३ ॥

अर्थ—इसीतरह शृङ्गारकुञ्ज में वेष अर्थात् दिव्य वस्त्र और भूषणों से शृङ्गार होता है। फिर अनेक तरह के व्यञ्जन अर्थात् दधि, तरकारी, अचार आदि और पक्वान्न दोनों सरकार को भोग लगावै। पुनः जलपान, आचमन आदि कराकर, सिंहासन पर पधरा कर आरती करै। इसी को नीराजन कहते हैं। यह नीराजन मङ्गलारोप पूर्वक होता है। इस तरह बाह्य पूजा के सहित मानसी पूजा का भावानुसार सब रसों के अनुकूल दिग्द-र्शन कराया गया। अब इस तरह भावानुसार सेवन के प्रकार को दिखाते हुए पुनः श्रीमिथिलेश-नन्दनीजू को प्रणाम करते हैं। इसके पहिले श्रीकनक-भवन में श्रीसीतारामजी का ध्यान करते हैं ॥ ६३ ॥

सौवर्णभवने प्रशस्तशयने भ्राजिष्णु भूषान्वितौ ।
संयुष्टौमिथिलावधूजनगणैः पूर्णेन्दुबिम्बाननौ ॥
अन्योन्यातुलसौकुमार्यविलसद्धेमाम्बुजेन्दीवरौ ।
श्रीसीतारघुनन्दनौ नवरसप्रेमार्द्रताङ्गौभजे ॥ ६४ ॥

अर्थ—सौवर्ण-भवन अर्थात् श्रीकनक-भवन में प्रशंसा के योग्य बहुमूल्य वस्त्रों से युक्त प्रशस्त शयन में अतिशय प्रकाशमय भूषणों से युक्त और श्रीमिथिलाजी के वधूजनगणों से सेवित पूर्णचन्द्रबिम्बके समान बिकसित, आह्लादकारी, त्रिताप हारी,

मुखमण्डल से शोभित अन्योन्य शोभा को प्राप्त हो रहे हैं। अर्थात् श्रीराजेन्द्रनन्दनजू से श्रीमिथिलेशकिशोरीजू की शोभा और श्रीमिथिलेशकिशोरीजू से श्रीराजेन्द्रनन्दनजू की शोभा हो रही है। इस तरह दोनों दिव्यदम्पति श्रीकनकभवनमें बिराजे हैं। सौकुमार्य्य से भरे हुए बिशेष रूप से शोभित पीतकमल और नीलकमल के समान वर्णवाले श्रीसीता समेत श्रीरघुनन्दनजू नव रसों के प्रेम से पूर्ण अंगवाले दोनों को मैं सदा भजता हूँ। यद्यपि वीमत्स, अद्भुत, करुणा आदि रसों में प्रेम ही प्रधान कहा गया है तथापि यहाँ पर पंच रस का उपलक्षक नवरस को जानना चाहिये। क्योंकि भक्ति में प्रधान पंच रस ही है। नवरस कहने का तात्पर्य्य केवल इतनाही है कि सर्व रसाश्रय श्रीसीता रामजी ही हैं ॥ ६४ ॥

निशान्तसमये प्रविश्य सखीगणैः सीतासमेता।
स्नानं च वेष विविधं करोति रामजाया ॥ ६५ ॥

अर्थ—निशा के अंत समय में सब सखीगण श्रीमिथिलेश नन्दिनीजी के समग्र अर्थात् पास में प्रवेश कर विविध प्रकार के स्नान वेषादि को अर्थात् शृंगारादि को श्रीरामजू की जाया करती हैं। यहाँ पर भी अथवा 'राम जाया' 'कुर्वन्ति' यह दोनों बहु वचनान्त पाठ हैं इस में यह अर्थ सब सखिगण अपना शृंगारादि करती हैं। इसमें शृंगार की विशेषता दिखला रहे हैं। ऐसे ही समय समय पर सब रसों की विशेषता श्रीअग्रस्वामीजी

अपने अष्टयाम में दिखावेंगे ॥ ६५ ॥

प्रफुल्लनवचंपकोज्वलां सुकान्तिदेहाश्रयाम् ।
सुनील ललिताम्बरां मणि महार्हभूषोज्वलाम् ॥६६॥

अर्थ—प्रकर्ष से फूले हुए नवीन चंपक के समान उज्ज्वल सुन्दर कान्ति युक्त देह के आश्रय भूत सुन्दर नील ललित अम्बरों से युक्त मणिमय महार्ह मूल्य के भूषणों से उज्ज्वल हैं॥ ६६ ॥

क्वणत्कनक नूपुरां कलितपादपद्मद्वयाम् ।
नमामि जनकात्मजां प्रियसखीकुलैः सेविताम् ॥६७॥

अर्थ—और प्रणव अनहदादि शब्दों को लज्जित करने वाले शब्द से शब्दायमान सुवर्ण के नूपुरों को धारण किये हुए निरतिशय शोभावाले दोनों चरण कमल वाली तथा अपने प्रिय सखी गणों से सेवित श्रीजनकात्मजाजी को मैं नमस्कार करता हूँ॥६७॥

निशान्त समये प्रिय प्रणये केलिभग्नाकुलस्रजाम् ।
अमितगुणस विशेषिकां प्रथितकान्तपरमोत्सवाम् ।६८।

अर्थ—पुनः निशाके अंत समय प्रियके साथ प्रणय केलिमें भग्न अर्थात् टूटी हुई अथवा आकुल नाम बिलुलित माला से युक्त ऐसे वर श्रेष्ठ विशेष प्रातः काल के लक्षण से युक्त और प्रथित नाम प्रसिद्ध जो कान्त का प्रेम उस से बढ़ा हुआ है उत्सव आनन्द जिनके हृदय में ॥ ६८ ॥

सखीभिरति प्रीतिदर्शैः कमलपाणिभिः ।
सेवितां नमामि जनकात्मजांमधुरधीरदृष्टिप्रभाम् ६९

अर्थ—तथा कमल को हाथ में लिये हुए अति प्रीति दशा वाली सखियों से सेवित मधुर और धीर दृष्टि प्रभाव वाली श्रीजनकात्मजाजी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ६९ ॥

प्रातः निशान्तसमये वरहेमझारी,
वार्य्यंवरव्यजन चामरधारिणीभिः ।
संसेवितां प्रिय सखीभिरुदीर्णशोभां,
सीतांसरोरुहकरां प्रणमामिभूयः ॥ ७० ॥

अर्थ—निशान्त के समय अर्थात् प्रभात में श्रेष्ठ सुवर्ण की झारी सुन्दर श्रीसरयू जल से भरी हुई कोई सखी लिये खड़ी हैं, कोई अंबर मनोहर वस्त्रोंको लिये हैं, कोई सुवर्ण दंतसे युक्त मणिमय व्यजन तथा चंवर को धारण किये हुए खड़ी हैं ऐसी प्रिय सखियों से सेवित बढ़ी हुई शोभा वाली मनोहर सुगन्धित सद्यः तुरन्तके फूले हुए कमल को धारण किये हुए श्रीबिदेहनन्दनीजी को मैं पुनः प्रणाम करता हूँ ॥ ७० ॥

सरसगन्धविग्रहां सरस गन्ध तैलादिभिः ।
विमृष्ट मणि किंकिणी कनकरत्न हारावलीम् ॥ ७१ ॥

अर्थ-ततः सरस गन्ध युक्त दिव्य विग्रह वाली प्रिय सखियों ने सरस गन्ध तैलादि से अंग का उवटन किया है इससे विशेषतः मार्जित मणिमय किंकिणी सुवर्ण और रत्नों की हारावली से शोभित ॥ ७१ ॥

पुरान्तराभिशोभिते मणिशिलादिविधान्तरे ।
सखीभिरुपगच्छतीं सरसिजाननीं चिन्तयेत् ॥ ७२ ॥

अर्थ—तथा अभितः अर्थात् सब ओर से शोभा युक्त मैन-शिलादि बिबिध प्रकार के पृथक् पृथक् रचना से युक्त भूमि में अपनी प्रिय सखियों से सम्मिलित होकर दूसरे कुञ्ज में स्नानार्थ कुण्ड समीप जाती हुई कमल नयना श्रीबिदेहनन्दनीजू का चिंतवन करना चाहिये ॥ यहाँ पर कई श्लोकों से प्रातःकाल का उत्थापनादि क्रीड़ा वर्णन किया गया है वह आचार्य्य उप-देशानुसार अपने अपने रस के अनुकूल जिसको जो प्रिय लगै वह उस भाँति से चिन्तवन करै ॥ ७२ ॥

तावत्सरोवर सुखे सुबिगाहमाना,
चित्रांशुकेन मृजितानन चन्द्रदेहाम् ।
संमृष्ट चारु चिकुरानपि दिब्य गन्धैः,
सिक्तान्तथैव रघुराजवधूं नमामि ॥ ७३ ॥

अर्थ—इसके बाद स्नानकुञ्ज गत सरोवर में सुखसे अवगाहनकर स्नान किया, फिर चित्र विचित्र वस्त्र से मुखचन्द्र तथा समस्त देहका मार्जन भया। प्रिय सखीगण दिब्य गन्धोंसे आपकी चारु चिकुरावली अर्थात् केशों को सँवारती हैं, अतः दिब्य गन्धों से सिक्त रघुकुल के राजाधिराज श्रीरामजी उनकी वधू श्रीजनका-त्मजाजी को मैं नमस्कार करता हूँ। वधू कहने से यह जनाये कि सदा एक रस अवस्था इच्छामय रहती है ॥ ७३ ॥

तावद्विमृष्ट तनु केशलतां सुसिक्तां,
चित्रांशुकेन सरसी गत देवताभिः।
चित्रारुणांचल दुकूल बिभूषमाणां,
मंजीर रंजित पदां प्रणमामि सीताम् ॥७४॥

अर्थ—तब तक आपकी प्रिय सहचरी आप के केश आदि को मार्जन करती हैं और चित्र विचित्र वस्त्रों को धारण कराती हैं उस कुञ्ज की अधिष्ठात्री सखी गण ही सरसी गत देवता हैं उन्हीं की यह सेवा है। चित्र अरुण रंग के अंचल दुकूलों से बिभूषमाण तथा मंजीर से रञ्जित पद पद्म ऐसी श्रीबिदेहनन्दिनीजू को मैं प्रणाम करता हूँ ॥७४॥

भास्वच्छिला रचित वर्ण, बिचित्रचित्रां,
जात्यैः सरस्तटभवैर्मणि शब्द भृद्भिः।
मंजीर नूपुर लसन्मणिसिंजितांघ्रीं,
ध्याये सुमंजु गतिभिश्च बृतां सखीभिः ॥७५॥

अर्थ—पुनः प्रकाशमय अनेक प्रकारके धातुवों से रचित जो वर्ण विचित्र उन सबों से भी अति विचित्र अर्थात् प्रका-प्रकाशमय अद्भुत छवि छटा को आप प्रगट करती हैं तथा मणि शब्द को धारण करने वाले अनेकों जाति के सरस तट में प्रगट हुए विचित्र मणिभूषणों से भूषित हैं, मंजीर नूपुरादि अर्थात् श्रेष्ठ मणियों से भूषित हैं, चरणारविन्द और उनमें प्रणव

आदि के गम्भीरार्थ को बोधन कराने वाले शब्दों से शोभित चरण वाली तथा सुन्दर मंजु मनोहर अद्‌भुत गति वाली सखी वृन्दोंसे परिवेष्टित श्रीराजेन्द्रनन्दिनीजूको मैं सदा ध्यानकरता हूँ

रत्नस्तम्भ शतान्विते मणिमये शय्यानिलैः शोभिते,
तादृक् चित्रितमासने सुललिते न्यस्तोपधानादिके ।
भ्राजन्तेऽप्रतिम प्रभाभिरलिभिः शुद्धाङ्गकान्ति श्रियं,
हृष्टां प्रेष्ट सखीगणेन समुदान्ध्याये विदेहात्मजाम् ७६

अर्थ—सूर्य्यादिक के कान्ति को तिरस्कार करने वाले रत्नों से खचित अनन्त स्तम्भों से युक्त तथा मणिमय शीतल मन्द सुगन्ध त्रिविध बयारि से शोभित तादृक् भवन चित्रतम आसन के ऊपर सुन्दर ललित उपधान तकियादि जिसमें स्थापित किये गये हैं तथा जिन के समान कोई भी प्रभा वाले नहीं हैं ऐसे प्रकाशमय सुगन्ध लुब्ध अलि गणों से सेवित शुद्ध अंगो की कान्ति जिनकी ऐसी प्रियतर सखीगणों की भावमयी सेवा से अति हर्ष को प्राप्त अति आनन्दभरी श्रीबिदेहात्मजाजी को मैं ध्यान करता हूँ ॥ ७६ ॥

प्रक्षालितांघ्रि कमलां ललितासनस्थां,
प्रेष्टालिभिः परम वेष विभूषमाणाम् ।
पत्रावली　　कुसुमदाममहार्ह भूषां,
सिन्दूर बिन्दु कवरी रचनैः सुसेव्याम् ॥ ७७ ॥

अर्थ—पुनः स्नानकुञ्ज से शृङ्गारकुञ्ज पधारने पर प्रिय

सखीगण सब आप के चरण कमलों का प्रक्षालन करती हैं। अतः प्रक्षालित चरण कमल वाली आप ललित आसन पर स्थित होती हैं और निरतिशय प्रिय अलिगण अपने प्रेमरस से परम सुन्दर विभूषणों से शृङ्गार करती हैं, मनोहर सुन्दर पत्र तुलसी आदि के और अनेकों तरह के सुगन्धित पुष्पों की माला महार्ह मूल्य वाले भूषणों से आप भूषित होती हैं। ललाट में सिन्दूर का बिन्दु तथा कवरी अर्थात् चोटी की रचनाओं से सुन्दर सेवित श्रीजनककिशोरीजी को मैं नमस्कार करता हूँ॥ इस पद में यद्यपि 'ध्याये' 'नमामि' इत्यादि पद नहीं हैं तथापि द्वितीयान्त शब्दों के प्रयोग से नमामि आदि पदों का अध्याहार कर लेना होगा ॥७७॥

देवार्चनं ततः कुर्य्यात्स्वात्मनः प्रियया सह।
तदन्तरं प्रविश्यासौ श्रीरामो मातृ सन्निधौ ॥७८॥

अर्थ—इस तरह दोनों दिव्य दम्पति स्नान शृङ्गारादि करने पर देवार्चन करते हैं। उसका वर्णन श्रीअग्रस्वामीजी करते हैं कि श्रीरामजी अपनी प्रियाजूके समेत श्रीरंगजीके मन्दिर में जा कर देवार्चन करते हैं तदनन्तर माताजीके भवनमें जाते हैं। यहाँ पर ७८ श्लोक से लेकर ८६ श्लोक तक वात्सल्य, सख्य दास्य, इन तीनों रसों का दिग्दर्शन कराते हुए श्रीअग्रस्वामीजी का वर्णन है॥ ७८॥

घृतपक्वादिकं स्वान्नं कौशल्यादि प्रकल्पितम्।
श्रीरामचन्द्रः सौमित्रिर्भरतः शत्रुसूदनः॥ ७९॥

अर्थ—श्रीकौशल्यादि सब माता अपने प्रिय वत्स श्रीरघुनन्दनजू के लिये अनेक तरह के व्यंजनों तथा पक्वानों को तैयार रखती हैं वह कौशल्यादि प्रकल्पित सुन्दर घृतपक्वादि अन्न श्रीरामचन्द्रजी तथा सुमित्रानन्दवर्द्धन श्रीलक्ष्मणजी तथा श्रीभरतजी और श्रीशत्रुघ्नजी ॥ ७९ ॥

नाना रसविनोदेन भुक्तंस्वैः सखिभिः प्रियैः ।
तदन्तरमलंकुर्य्याद्गज बाजि रथादिभिः ॥८०॥

अर्थ—और भी सुन्दर मनोहर वयस्क रघुवंशी कुमार अपने प्रिय सखाओं के सहित वात्सल्य मय नाना रस विनोद से भोजन करके माताओं को सुख देते हैं इसके बाद सब सेवक गण हाथी, घोड़ा, रथ आदि चतुरङ्गिणी सेना को साज कर तैयार रहते हैं ॥ ८० ॥

छत्र चामर हस्तैश्चभृत्य वृन्दैः सुबेष्टितः ।
ततः शस्त्रास्त्र शिक्षां च गज बाजि रथादिभिः ॥८१॥

अर्थ—भ्राता सखाओं के सहित भोजन करने पर ताम्बूलादि सुगन्धित वस्तुवों को लेकर जब सिंहासन पर बिराजते हैं तब सेवक वृन्द छत्र चामर आदि अनेक तरह के राजोपचारों को लेकर आप की सेवा में उपस्थित होते हैं इसके बाद हाथी, घोड़ा रथादिकों की सेवा ग्रहण कर आप शस्त्र अस्त्रादि शिक्षा को ग्रहण करते हैं। यह शिक्षा आपकी अपने प्रिय वर्गों के सिखाने के लिये ही है ॥ ८१ ॥

छत्रं सुलोचनो धृत्वा सुभद्रश्चामरं तथा।
आदर्शं सुचन्द्रश्च जयसेनो ब्यजनान्वितः ॥ ८२ ॥

अर्थ—जब श्रीरामजी सिंहासन पर विराजमान होते हैं तब सुलोचनजी छत्र को धारण कर सेवा में उपस्थित होते हैं। इसी तरह सुभद्रजी चामर सुचन्द्रजी दर्पण और जयसेनजी ब्यजन को लेकर सेवा में उपस्थित होते हैं। इस श्लोक में एक अक्षर अधिक है। वह प्रेम बुद्धि से जानना चाहिये ऐसे ही अन्यत्र समझना ॥ ८२ ॥

बरिष्ठः स्वर्णझारीं च सुशीलो बीटिकां तदा।
अनंगजित्खड्गपाणी रसकेतुर्धनुर्महत् ॥ ८३ ॥

अर्थ - और बरिष्ठ जी स्वर्ण की झारी मणि जटित लिये हैं और सुशीलजी सुन्दर मणियों से जटित पान का डब्बा लिये हैं इसी तरह अनंगजित् खड्ग को लेकर और रसकेतुजी सुन्दर पूज्य धनुष को लेकर अपनी सेवा में तत्पर होते हैं ॥ ८३ ॥

इत्यष्टौ मंत्रिपुत्राश्च रामसेवापरायणाः।
कैंकर्य्य भावः सर्वेषां समवेषाः किशोरकाः ॥ ८४ ॥

अर्थ—ये आठों मंत्रियों के पुत्र हैं। सदा श्रीरामजी की सेवा में परायण रहते हैं श्रीरामजी के कैंकर्य्य में सब का दृढ़ भाव है और श्रीरामजी के समानही राज वस्त्र भूषणों से इनका वेषहै अर्थात् शृङ्गारहै और किशोर अवस्था वाले हैं ॥ ८४ ॥

भ्रातृभिस्सहितः कुर्य्यान्मृगयां नाति हिंसिताम् ।
जीवन्तं मृगमादाय पितुरग्रे समर्पयेत् ॥ ८५ ॥

अर्थ—इस तरह सिंहासनासीन श्रीरामजी की सेवा वर्णन करके अब पुनः प्रथम वाले प्रसंग को वर्णन करते हैं अर्थात् माताजीसे समर्पित दिब्य पक्वान्नादि भोजन कर भ्राता, सखा, दास सब को साथ में लेकर मृगया खेलने जाते हैं भ्राताओं के सहित मृगया अर्थात् शिकार खेलते हैं पर वह मृगया अति हिंसा-मयी नहीं है अर्थात् अन्य प्राकृत राजकुमारों के समान जीवों की हिंसा नहीं करते किन्तु राजर्षि बंशोचितही इस क्रीड़ाको आप नित्य करते हैं और अनेक जन्म के पुण्य संचय वाले जीव जो मृग योनि में प्राप्त श्रीसरयू तट पर हैं उन्हें कृतार्थ करने के लिये आप की यह लीला है । अतः जीते हुए सुन्दर मृगों को पकड़ कर ले आते हैं और पिताजी के सामने समर्पण करते हैं ॥८५॥

प्रातर्मुहूर्त युग उज्ज्वल हेमपीठे,
बिभ्राजतीं प्रियसखीभिरुपास्यमानाम् ।
श्वश्रूप्रणीत मधुरं दधिखंड सारं,
सन्मोदकादिक सुतर्पित सुप्रसन्नाम् ॥ ८६ ॥

अर्थ—यहां तक श्रीरामजी की दिनचर्य्या कह करके अब पुनः श्रीमिथिलेश किशोरीजी की दिनचर्य्या वर्णन करते हैं । प्रातःकाल दो मुहूर्त अर्थात् प्रहर दिन बीतने पर उज्ज्वल सुवर्ण सिंहासन पर अपनी प्रिय सखियों से उपास्यमान शोभा को प्राप्त

तथा श्रीकौशल्या अंबा आदिक श्वश्रुओं (सासुओं) से लाये हुए मधुर दधि खंड सार आदि तथा उत्तम मोदकादि पक्वान्नों से संतर्पित होकर सुप्रसन्न होती हैं ऐसी श्रीजनकराजकिशोरीजू को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८६ ॥

तामात्मजातिसहितां सुखभोजनां च,
आचम्य चित्र बिमलासन सन्निविष्ठाम् ।
ताम्बूल चर्वित मुखेन प्रमोदमाना-
मादर्श दृष्टबदनां प्रणमामि सीताम् ॥ ८७ ॥

अर्थ-श्रीकौशल्या अंबा देखती है कि प्रीति में भरे हुए अपने आत्मज श्रीरामजी के अति प्रीति सहित अर्थात् क्षण भर भी कभी पृथक् नहीं रहसकतीं इससे अति प्रीति सहित कहा। अथवा अतिशय प्रसन्न क्षत्रिय कुमारियों के सहित सुखमय भोजन को कर के आचमन कर विमल आसन पर बिराजी हैं, प्रिय सखियों से समर्पित ताम्बूलको चर्वण कर रही हैं, इस तरह प्रसन्न कांति युक्त मुखारविंदसे प्रमोदमान हैं पुनः श्रीचन्द्रकलादि प्रिय सखियों से दिखाये हुए आदर्श (दर्पण) में चन्द्रवदन को देख रहीं हैं ऐसी श्रीजनकात्मजा जी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ८७ ॥

यामान्तरे सहचरी सहितां समेत्य,
सुश्रृङ्खलं कवरि केशरमानयंतीम् ।
नित्यं धृतामुरसि मोद भरेणापत्या,
संचुंबितां सकमलां प्रणमामि सीताम् ॥ ८८ ॥

अर्थ-एक प्रहर के भीतरही अपनी सहचरियों से युक्त मिलकर सुन्दर शृंखल आदि भूषणों को धारण कर मोतियों से कवरी अर्थात् चोटी को सखी संवार रही हैं आप उनके समर्पण किये हुए उनके रुचि के अनुसार ही ग्रहण करती हैं और मोद में भरे अपने प्रिय पति श्रीरघुनन्दनजू से नित्यही उर-स्थल में धारण की गयी अर्थात् श्रीवत्स चिन्ह के बहाने से सदा आपही उरस्थल में बिराजती हैं। और प्रेम से संचुंबित तथा कमल को धारण किये हुए श्रीजनकात्मजाजू को मैं सदा प्रणाम करता हूँ॥ ८८ ॥

कौशल्यादि कुलैः प्रशाधित शिरो माणिक्य चित्रांवरां,
सिन्दूरागरु फुल्ल दाम मणिभिर्मंजीर हारादिभिः ।
श्वश्र्वा चापि विसाधितां मणिमये हेमासने राजतीं,
भुंजानान्दधि खंड शर्कर पृथग्ध्याये बिदेहात्मजाम् ८९

अर्थ-श्रीकौशल्यादि अंबाओं के समूह से वात्सल्य रस बश सुन्दर शृंगार किया गया है शिर आदि अंगों का जिनके और माणिक्यमणि आदि से तथा चित्र बिचित्र अंबरों से और सिन्दूर अगरु सुगन्धित फूलों की माला तथा मणिहारों से एवं मंजीर तथा अन्य बिचित्र हारादि से श्रीकौशल्या अंबा ने भी बिशेष शृंगार किया है। पुनः मणिमय सिंहासन पर बिराजती हैं और दधि खंड शर्करादि मधुर पदार्थों का भोजन करती भई ऐसी श्रीबिदेहात्मजाजी का मैं ध्यान करता हूं ॥ ८९ ॥

पूर्बाह्न संचर उदीर्ण रबि प्रकाशे,
संजात घर्म्म कण सिक्त मुखारबिन्दाम् ।
कांतामिवास्नपन मंगलमिच्छतीभिः,
आलीभिरभ्युपबृताम्प्रणमामि सीताम् ॥६०॥

अर्थ—पूर्बाह्न के समय अपने संचार से बढ़े हुए सूर्य्यभगवान् के प्रकाश में अति सुकुमारतासे पसीनाके कण मुखारबिन्द पर सिक्त हो रहे हैं उन प्रस्वेदकणों को देख कर प्रिय सखीगण आप को श्रमित हुई सदृश समझ कर स्नान कराने की इच्छा से चारों तरफ अलिगणों से परिवेष्टित श्रीबिदेहात्मजा जी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ६० ॥

प्राविशत्पाकशालायां तदन्तेजनकात्मजा ।
श्रीरामस्यसुभोज्यार्थं सखीभी रसवत्कृतम् ॥६१॥
नानाव्यंजन संयुक्तं रामप्रिय करं तथा ।
अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैःषड्भिः समन्वितम् ॥६२॥
भक्ष्यं भोज्यं च लेह्यं च चोष्यं पेयं गुणान्वितम् ।
एवं बहु विधं भक्ष्यं रंधितं सीतयाहृतम् ॥ ६३ ॥

अर्थ—अब वात्सल्य सख्य आदि की प्रणाली से अन्य प्रकरण का वर्णन करते हैं। यद्यपि आप की प्रिय सखीगण सब प्रकार प्रीति पूर्वक दिव्य दम्पति की सेवा में तत्पर रहती हैं तथापि श्री जनकात्मजा जी पाकशाला में प्रवेश कर श्रीरामजी

के भोजन के लिये पाकशाला में नियुक्त सखीगणों ने श्रीरामजी को प्रिय लगने वाले रस संयुक्त नाना व्यंजन जो किये हुए हैं लेह्य, चोष्य, भक्ष्य, भोज्य, चतुर्विध स्वाद वाले अन्न जो षट्रस समन्वित हैं और भी पेय आदि गुणान्वित बहु प्रकार के भोजन बनाये हैं उस अन्न को आदर पूर्वक स्वयं ले आती हैं ॥ ६३ ॥

शालीभक्तं सुभुक्तं ससित सितकंपायसं पूपकंच,
लेह्यं पेयं सुचोष्यं सुखमभृतफलं दाड़िमाद्यं रसालम् ।
आज्यं ग्राह्यं गुणाढ्यं नयनरुचिकरं राजकेलं मरीच्यं,
स्वादीयं शाकमन्नं जिरक परिकरंसंभृतं सीतयालम् ६४

अर्थ—सुन्दर सुगन्धमय अति महीन उत्तम शाली का भात और भी जाति जातिके भिन्न भिन्न तन्दुलों का भात तथा मिश्री मिलाया हुआ पायस और पूआ ऐसेही मनोहर लेह्य पेय चोष्य व्यंजन और सुखमय अर्थात् अपने स्वादसे सुख देनेवाले सुन्दर अमृत के समान मीठेफल दाड़िमादि और रसाल आम्रफल तथा सद्यः घृत एवमादि ग्राह्य गुणों से युक्त नेत्रोंमें रुचि बढ़ाने वाली राई एवं लालमिर्च और कालीमिर्च आदिके स्वाद युक्त अनेक प्रकार के शाक मूल और अन्न जिनमें जीरा आदि अनेक प्रकार के मसालों से मिलाकर बनाये गये हैं ऐसे अमृतमय अन्न जो श्रीजानकीजी से समर्पित श्रीरामजी आप ग्रहण करते हैं ॥६४॥

तदन्ते हृदयानन्दे श्रीरामागार चिंतनम् ।
सुवासित जलेनैव स्वर्णभारीं प्रपूरयेत् ॥ ६५ ॥

अर्थ—इस तरह आचार्योपदेशानुकूल अपने अपने भाव से चिन्तन करै। उसके अन्त में आनन्दरूप हृदय कमल में श्रीराम जी की भोजन शाला का चिंतन करै पुनः सुन्दर सुगन्धित जल से स्वर्ण के भारी को मानसी सेवा में पूर्ण करै ॥ ६५ ॥

आगच्छन्तं राजमार्गे रामं दशरथात्मजम्।
विलोकयंतितं सर्वाः श्रीअयोध्यावधूजनाः ॥ ६६ ॥

अर्थ—भोजन करके श्रीरघुनन्दनजू रथ आदि सुन्दर सवारी पर चलते हैं। हाथी घोड़ा रथ पैदल आदि एवं अनेक वाद्यों के सहित श्रीचक्रवर्तिकुमार रामजी को राजमार्ग में आते हुए सब अयोध्या बासी वधूजन दर्शन करती हैं ॥ ६६ ॥

ततःसंगत्य सचिवैर्विचार परिचिंतनम्।
ततः सभामध्यगतः सतांसचिंतनं तथा ॥ ६७ ॥

अर्थ-इस तरह सबके नैनको सुफल करते हुए आप राजसभा में जाकर मन्त्रियों से विचार करते हैं, विशेषतः सभा के मध्य प्राप्त होकर श्रीरामजी सज्जनों के कल्याण का चिंतन करते हैं

आसन्नदूत संमानंततः कुर्य्यात्प्रयत्नतः।
ततोब्राह्मण संमानं क्रियां कृत्वातुवैदिकीम् ॥ ६८ ॥

अर्थ—इसीतरह कहीं से अथवा श्रीमिथिलाजी से आये हुये दूत का सन्मान प्रयत्न पूर्वक करते हैं। ततः ब्राह्मणों को बस्त्र भोजनादि तथा अपेक्षित बस्तु दान से सन्तुष्ट करके उनका सन्मान करते हैं फिर वैदिक कृत्य करते हैं ॥ ६८ ॥

ततोदानं द्विजातिभ्यो दत्वा सात्विकमानसः ।
भोजनार्थं ततोगत्वा सीतागृहमनुत्तमम् ६६ ॥

अर्थ—इस तरह सात्विक मनसे अर्थात् श्रद्धा पूर्वक यथा योग्य औचित्य विचार कर ब्राह्मणों को दान देते हैं । फिर मध्याह्न में भोजन के लिये श्रीविदेहराजकुमारीजू के भवन को जाते हैं ॥ ६६ ॥

सीतयाचाहृतं तूर्णं चतुर्विधमनुत्तमम् ।
नानारस समायुक्तं महाराजोपयोगिकम् ॥ १०० ॥
रत्नसिंहासनेस्थित्वासीतया सह भोजनम् ।
एवं विचार्य्य मतिमान्सुवासित जलैःपुनः ॥१०१॥

अर्थ—चक्रवर्ती राजाओं के योग्य सर्वोत्तम श्रीजानकीजी के हाथ से परोसे हुए चार प्रकार के नानारस समायुक्त अन्न को रत्नमय पीठ के ऊपर श्रीविदेहराजकुमारीजू के सहित भोजन करते हैं ऐसा मतिमान् साधक विचार करै । फिर उसके बाद सुन्दर सुगन्धित जल से आचमन करावै ॥ १००-१०१ ॥

आचमनं ततो दद्यात्ताम्बूलं चन्द्र वासितम् ।
पर्य्यंकेशयनं कृत्वा घटीमेकां रघूत्तमः ॥ १०२ ॥

अर्थ—आचमन कराकर सुगन्धित लवंग केशर कर्पूरादि से वासित ताम्बूल देवे । पुनः मणिमय पर्यङ्क पर नाना प्रकारके तकिया बिछौना से सुसज्जित पलंगपर शयन करावै । श्रीरघूत्तम जी एक घटिका शयन करके निद्रा का परित्याग करते हैं १०२

निद्रांपरित्यज्य ततः प्रक्षाल्य मुखपंकजम् ।
अंग संमार्जनं वस्त्रैस्ततो वेष प्रकल्पनम् ॥ १०३ ॥

अर्थ—निद्रा परित्याग करने पर पुनः सुन्दर जल से मुख कमल का प्रक्षालन करते हैं । ततः कोमल वस्त्रों से अंगों का संमार्जन होता है, फिर उत्तम शृङ्गार होता है ॥ १०३ ॥

उष्णीषं कंचुकादींश्च खड्ग चर्म समन्वितम् ।
ततः सभामध्यगतं चिन्तयेद्भक्तिमान्नरः ॥ १०४ ॥

अर्थ—महार्ह वस्त्र तथा मणियों से रचित पगड़ी एवं कंचुकादि अर्थात् दिव्य अंगों के वस्त्र धारण कर ढाल तलवार के सहित धनुर्वाण को धारण कर सभा में जाकर विराजते हैं । भक्तिमान नर इस तरह अपने भावानुसार आचार्योपदेशानुकूल चिंतन करै

न्यायेन दानमादाय पालनं दण्ड धारणम् ।
हास्य लास्य क्रियादींश्च परिहास विशारदैः ॥१०५॥

अर्थ—सभा में बैठकर न्याय पूर्वक प्रजा के दिये हुये कर को ग्रहण करते हैं और न्यायके साथ सबको पालन तथा दण्ड धारणादि राजाओंके उचित कृत्योंको करतेहैं जिसमें सब राजाओं को शिक्षा प्राप्त हो । पुनः परिहासमें प्रवीण अपने प्रिय सखाओं के सहित हास्य तथा लास्य नृत्य इत्यादि कृत्योंका पालन करतेहैं

जनैः संबोष्टितस्तत्र ततो राजनिमेलनम् ।
दूतप्रस्थापनं साधु जनानां मानवर्द्धनम् १०६

अर्थ—अपने प्रिय जनों से वेष्टित होकर राजाओं से मिलते हैं। अर्थात् उस समय सब देशों के राजा गण आते हैं और अपने अपने राज्यों की व्यवस्था श्री रामजी के सामने उपस्थित करते हैं और श्रीरामजी उन आवश्यक व्यवस्थाओं को उचित कार्य्यवाही करके अन्तिम राजाज्ञा के लिये उपस्थित करने के अभिप्राय से मन्त्रियों को सौंप देते हैं। फिर कहीं दूत भेजते हैं और साधुजनों का मान बढ़ाते हैं ॥ १०६ ॥

तदन्ते सरयूतीरे जल क्रीड़ाञ्च राघवः ।
नौकामारोहणं कृत्वा चतुर्भ्रातृ सखादिभिः १०७

अर्थ—यह सब कार्य्य करके चारों भ्राता सखाओं को साथ में लेकर मनोहर सुन्दर सजी हुई नाव के ऊपर सवार हो कर श्रीसरयूजी में जल क्रीड़ा करते हैं। जिसको देखकर श्रीअयोध्या बासी अतिशय प्रसन्न होते हैं और अपने जन्म को धन्य मानते हैं

ताण्डवानन्दितोऽनंत पौर जान पद प्रियः।
मोदकासन आनन्दी सरयू जल केलि कृत १०८

अर्थ—पुनः बाटिका के बंगला में बैठकर देश देश से आये हुए गुणी जनों के ताँडवादि नृत्य गान से प्रसन्न होते हैं। फिर अनंत पुरबासी तथा समीप बासी जान पदों को प्रिय करने वाले होते हैं। सब के मोद देने वाले आसन पर बैठकर आप आनंद को प्राप्त होते हैं और श्री सरयू जल में अनेक प्रकार की केलि क्रीड़ा करते हैं ॥१०८॥

अयोध्यावासिषु प्रीतोह्ययोध्या प्रेमवर्द्धनः ।
नगरानन्द सारङ्गः सर्व प्राणिमनोहरः ॥१०६॥

अर्थ–इस तरह अयोध्या बासियों में सब की प्रीति बढ़ाते हुए स्वयं प्रसन्न होते हैं । आप अयोध्या बासी मात्र के प्रेम को बढ़ाने वाले हैं । उन नगर बासी जनों के आनन्द स्वरूप ही हैं सारंग (सुन्दर मृग) के समान सब प्राणियों के मन को हरने वाले हैं ॥१०६॥

पुनः सभागतो रामो रत्न मंडप मध्यगः ।
नानालङ्कारकैः पुष्प वेषं विभर्ति सुन्दरम् ॥११०॥

अर्थ–यह सब क्रीड़ा करके पुनः सभा में प्राप्त होते हैं और रत्न मंडप के मध्य विराजते हैं और कभी अथवा नित्यशः नाना अलंकारादिक पुष्पोंके सुन्दर शृङ्गारको धारण करते हैं ।११०

मध्याह्नकाले रघुराज वल्लभा,
साकेत मध्ये सखियूथ सेविता ।
नाना विनोदं विपिने विधाय,
पुनः सखीभि र्जल कूलमागता ॥१११॥

अर्थ–इधर मध्याह्न काल में श्री रघुराजजू की वल्लभा श्री विदेहराजकुमारी जी श्री अयोध्या जी के मध्य अपने अन्तः पुर में अनेक सखी यूथों से सेवित होती हैं और आप भी अन्तः पुर की बाटिका में नाना प्रकार के विनोद करके पुनः अपनी प्रिय

सखियों के सहित बाटिका ही के पास जहाँ किसी पुरुष के जाने का गम्य नहीं है श्री सरयू जी के किनारे आप प्राप्त होती हैं।

उर्मिला श्रुति कीर्तिश्च माण्डवी रामवल्लभा।

चतसृणान्तु चैकात्म्यं ततस्ता जानकी समाः ॥११२॥

अर्थ-श्री उर्मिला जी श्री श्रुति कीर्तिजी श्रीमांडवी जी और श्री रामबल्लभा श्री जानकी जी ये चारों भगिनी एक रूप हैं। इसी कारण से ये सब श्री जानकी जी के समान ही हैं ॥११२॥

अथ जल क्रीड़ा

अनोभिवारित जले पुरुषप्रमाणे
सार्द्धंसखीभिरभि नित्यविहारकेलिम्
सिक्तां करांजलि जलेन सरोजरेणुम्,
गन्धार्दितेन रभसाक्त कृताहृदव्जे ॥११३॥

अर्थ—नावों से अथवा कनातों से जल में परदा लगे हैं और वह जल भी उस जनाने घाट में पुरुष के प्रमाण ही है। अधिक गहरा नहीं है। तात्पर्य्य यह है कि श्रीसरयू जी भी विचार लिये हैं कि यहाँ पर अपने सखियों के सहित श्री मिथिलाधिराज नन्दिनी जी नित्य क्रीड़ा करती हैं इस कारण से उस घाट को कभी भी गहिरा नहीं करती हैं उसी जल में सखियों के सहित आप नित्य विहार केलि करती हैं वह विहार केलि सखियों के कर कमलों की अंजलि जल से सिक्त है अर्थात् परस्पर अंजलि में जल लेकर एक के ऊपर एक सींचती हैं और वह जल भी कमल

के रेणु गन्ध से पूरित है और सब के हृदय कमलों में केलिका वेग भरा हुआ है इस कारण से उत्साह उत्तरोत्तर बढ़ रहा है ११३

कल्हारहारि 'कमलादिभिरिष्ट वेषाम्,
वक्षः स्थलेश्रुति युगे प्रमदोत्तमाभिः।
स्नातां सुखेन परिमज्जन कौशलेन,
स्नातां सुगन्धित जलेनच तां स्मरामि ॥ ११४॥

अर्थ—कल्हार की सुगन्ध को हरने वाली श्री कमला आदि सब सखी सुन्दर सुगन्धित चूर्ण से श्री राजकिशोरी जी के वेष अर्थात् शृङ्गार को अपनी अपनी रुचि के अनुसार करती हैं जैसे वक्षस्थल में और दोनों श्रवणों में भूषणों को धारण कराती हैं इसी तरह स्नान के चातुर्य्य सुख से सुख पूर्वक स्नान कराती हैं। पुनः सुगन्धित जल से स्नान कराती हैं। भाव यह है कि सखी सब पहले स्नान की चातुरी के सुख से आपको स्नान करा देती हैं पश्चात् सुगन्धित जल से। अर्थात् सखियों की चातुरी आनन्द से आप आनन्द को प्राप्त होती हैं तत्पश्चात् स्नान करतीहैं. ऐसी अपने परिकरों की सेवासे प्रसन्न होनेवाली श्री रामबल्लभाजू को मैं स्मरण करता हूँ ॥११४॥

जलक्रीड़ान्तेऽलङ्कारं कुर्यात्सीता सखी गणैः।
नाना वेषैर्मनोज्ञैश्च रामालोकन तत्परा ॥११५॥

अर्थ—जल क्रीड़ा के अन्त में नाना वेष वाली परम मनोहर सुन्दरी सखी गणों से समर्पित अलंकार को धारण करती हैं

और फिर श्रीरामजी के दर्शन की उत्कण्ठा में तत्पर हुई उनके पास आप जाती हैं ॥ ११५ ॥

लक्ष्मणा ताम्बूल सेवां श्यामला गन्ध मोदकम् ।
हंसी चन्दन लिप्ताङ्गं सुगमा चन्द्र वासकम् ॥११६

अर्थ—जैसे पहले सखाओं की सेवा का वर्णन कर आये हैं उसी तरह सखियों की सेवा का वर्णन करते हैं। श्रीलक्ष्मणा जी ताम्बूल की सेवा करती हैं, श्रीश्यामला जी अतर आदि सुगन्धित वस्तुओं से एवं मोदक आदि पक्वान्नों से सेवा करती हैं श्री हंसी जी कोमल करकमलों से मृदु अंगों में चन्दन आदि लेपन करने की सेवा करती हैं और श्री सुगमाजी कर्पूरादि सुगन्धित द्रव्यों से एवं वस्त्र भूषणादि वस्तुओं को सवासित करने की सेवा करती हैं ॥११६॥

निगमा चामर सेवाञ्च　सुरसा वस्त्रकंतथा ।
वाग्मी पादाब्ज सेवाञ्च शास्त्रज्ञा वाद्य मंगला ॥११७।

अर्थ-श्री निगमा जी चामर की सेवा, श्रीसुरसा जी वस्त्र की सेवा, श्रीवाग्मी जी चरण कमलों की सेवा और श्रीशास्त्रज्ञा जी मंगलमय अनेक प्रकार के सुरीले बाजों को वजाकर मंगलमय गान की सेवा करती हैं ॥ ११७ ॥

आलापे वहुमंगला भोगज्ञा गायने रता ।
धर्म्मशीला पाद सेवा नित्य सेवा शयाह्निकम् ॥ ११८॥

अर्थ-श्रीबहुमंगला जी अनेक तरह के रागों का आलाप करती

हैं, श्री भोगङ्गा जी भी गान करने में तत्पर रहती हैं और धर्म्म शीला जी चरण सेवा करती हैं । इसी तरह प्रातः काल से लेकर शयन पर्य्यन्त अपनी अपनी नित्य सेवा में समय समय पर सब तत्पर रहती हैं ॥ ११८ ॥

गोपुरं सखिसंगेन ययौ श्रीरामबल्लभा
विलोकयन् गवाक्षेण श्रीराममुख पङ्कजम् ॥ ११६ ॥

अर्थ—जब वाटिकादिक विहार करके श्री रामजी लौटते हैं उस समय सखियों को संग लेकर गोपुर के गवाक्ष नाम झरोखों में बैठ कर श्रीरामजी के मुख कमल को श्रीरामवल्लभा जी अवलोकन करती हैं इसमें सखी के जगह पर सखि शब्द ह्रस्व छन्दानुरोधी ही जानना चाहिये ॥ ११६ ॥

एवं विचिंतयेद्धृष्टः प्रेमानन्देन साधकः ।
सीतारामविहारञ्च प्रेमामृत रसार्णवम् ॥१२०॥

अर्थ—इस तरह से हर्षित होकर प्रेमानन्द से प्रेमामृत रस का समुद्र श्रीसीताराम जी का विहार मन में साधक को चितवन करना चाहिये ॥ १२० ॥

अपराह्णेततोरामः शास्त्रशिक्षणातत्परः ।
आगतो वाम देवोऽपिमुनिर्वेद परायणः ॥ १२१ ॥

अर्थ—अपराह्ण समय में श्रीरामजी शास्त्र के शिक्षा में तत्पर होते हैं । उसी समय वामदेव ऋषि जो कि सर्व वेदों में परायण हैं वे शिक्षा देने के लिये आते हैं ॥ १२१ ॥

विद्यानाञ्च प्रपठनं परिचर्य्या गुरोरपि ।
पुनः शस्त्रास्त्र शिक्षांच अश्वारोहण तत्परः ॥ १२२ ॥

अर्थ—उनसे विद्या को अच्छी तरह पढ़ते हैं और गुरू की परिचर्य्या करते हैं। पुनः शस्त्र अस्त्र इन सबों की शिक्षा भी ग्रहण करते हैं। इसके बाद अश्वारोहण में भी तत्पर होते हैं। अर्थात् घोड़ों की सवारी करना, घोड़ों को नचाना और घोड़ों के सब तरह के गति को दिखाना इसमें तत्पर होतेहैं ॥१२२॥

चलत्पवन वेगेन हयेन सरयू तटे ।
क्षणे शीघ्रं क्षणेमन्दमश्वपृष्ठे रघूत्तमः ॥ १२३ ॥

अर्थ—यहाँ पर पुनः पुनः प्रसंगों को दिखलाकर केवल यह सूचना देते हैं कि अपने अपने रसों के अनुसार आचार्य्य उपदेशानुकूल इन का चिन्तवन करै। फिर पवन के वेग से चलते हुए घोड़ों पर श्री सरयू तट पर जाते हैं। किसी क्षण में बड़ी शीघ्रता के साथ घोड़े को चलाते हैं, कभी मन्द गति से चलाते हैं इस तरह घोड़ेके पृष्ठ पर श्रीरघूत्तम जी नित्य लीला करते हैं १२३॥

पुर वेशस्तदन्ते च सायं सन्ध्या उपासनम् ।
ततः पुराण श्रवणं साधुभिः सह सेवकैः ॥१२४॥

अर्थ—फिर उस क्रीड़ा के अन्तमें पुरमें प्रवेश करते हैं उससमय सन्ध्या का उपासन करते हैं। सन्ध्या के अनन्तर साधुवों के सहित और अपने सेवकों के सहित पुराणों का श्रवण करते हैं॥१२४

आज्ञां दत्वा ततो देवश्चाष्टौ सखींश्च राघवः।
ते च सर्वे ततो गत्वा स्वाश्रमाणि ततः पुरम् ॥१२५

दीपादिभिः प्रदोषे च निशीथान्त प्रकल्पनम्,
अन्तः पुरं गतो देवो यत्र सा जनकात्मजा ॥१२६॥

अर्थ-फिर अपने आठो सखाओंको आज्ञा देतेहैं। वे सब अपने अपने आश्रम में अर्थात् जिनका जहां निवास है वहाँ जाकर आवश्यकीय कार्य्यों का सम्पादन कर पुनः आते हैं और प्रदोष से लेकर निशीथ अर्थात् अर्द्धरात्रि पर्य्यन्त अपनी सेवा का प्रकल्पन करते हैं पुनः सर्वान्तर्य्यामी सर्व प्रकाशक देव श्री रघुनाथ जी अन्तः पुर में प्राप्त होते हैं। अन्तः पुर वह है जहां पर श्रीजनकात्मजा जू निवास करती हैं॥ १२५,१२६ ॥

विचित्राम्बर पुष्पादि कल्पिते शयने स्थितम्।
चारुभ्रुवं चारुनेत्रं स्मेरास्यं चल कुण्डलम् ॥१२७॥

अर्थ-अन्तःपुर में विचित्र मनोहर वस्त्र और पुष्पादि से कल्पित अर्थात् रचित शयन में श्रीराम जी स्थित होते हैं। चारु भ्रू सुचारु नेत्र प्रियावोंके प्रेम वश मन्द मुसुक्यानयुक्त मुखारबिन्द वाले श्रीरामजी चंचल कुण्डल युक्त पर्य्यङ्क पर विराजते हैं॥१२७

सखीभी रत्नदीपैश्च रचिता मंगलार्तिका।
परितः पूर्ण चन्द्राभैश्चामरै रुप वीजितः ॥१२८॥

अर्थ-उस समय अपनी प्रिय सखियों के सहित रत्न दीपों से रचित मंगलमय आरती होती है। सब ओर से अन्तः पुर के

परिकरगण चन्द्रमा के समान चवँर चलाते हैं उन चामरों से आप वीजित होते हैं ॥१२८॥

हेम भृङ्गार पयसामुख चन्द्रादिधावनम् ।
कर्पूर पूर्ण ताम्बूल चर्वणेनोपशोभितः ॥१२९॥

अर्थ—फिर कुछ समय के भोग को ग्रहण कर सुवर्ण के झारी के जल से मुखचन्द्र तथा हस्त पाद इत्यादि धोये जाते हैं । पुनः कर्पूरादि सब मसालों से पूर्ण ताम्बूल का चर्वण करते हैं इससे आप बहुत शोभित होते हैं ॥१२९॥

ततोद्यूतादिभिः क्रीड़ांकुर्य्याच्च सखिभिस्सह ।
ततोयंत्रैःसुललितैः रसभावानुमोदितः ॥१३०॥

अर्थ—फिर इसके बाद द्यूतादि क्रीड़ाको सखियों सखाओं के साथ आप करते हैं । ततः सुललित यंत्रों से रस के भावों का अनुमोदन करते हैं ॥१३०॥

पुनराचमनं स्नानं मुहूर्तद्वयमंतरा ।
कौशल्या हेमभवने गन्धमाल्यप्रसाधनम् १३१

अर्थ—यहाँपर श्रीअग्रस्वामीजीने कई बार स्नान शृंगार आदि प्रकरणों को पलट २ कर कहा है । इसका तात्पर्य्य यह है कि सब रस वाले जिसको जो रुचै उसको आचार्य्योपदेश और अपने रस के अनुकूल समझ लेवैं इसी से सब रसों का दिग्दर्शन मात्र कराते हैं । पुनः आचमन होना, और स्नान यह दो मुहूर्त के भीतर सब हो जाता है फिर श्रीकौशल्या अम्बा के सुवर्ण मय

मन्दिर में जाकर चन्दन अतर माला एवमादि सब शृंगार का साधन होता है ॥१३१॥

सुमित्रास्नेहरचितं मोदकंक्षीर भोजनम्।
संवीतमतिस्वच्छेन गन्धसिक्तेनवाससा १३२।

अर्थ—इसके पहले वात्सल्य में भरी हुई श्रीसुमित्रा अंबाने स्नेह से रचित मोदक और उत्तम दुग्ध के भोजन तयार किये हैं वह सब अति स्वच्छ सुगन्धसे सींचे हुए वस्त्रोंसे ढाँककर रक्खेगये हैं

सुरङ्गमन्दिरंगत्वा हेमपीठोपवेशनम्।
ततोवेषक्रियां कुर्य्याच्छृङ्गारोचितमुत्तमाम् ॥१३३

अर्थ—माता सब वात्सल्य में भरी हुई अपने लालन को दुलार के साथ प्रेम से भोजन कराती हैं। फिर वहाँ से सुन्दर रङ्ग मन्दिर में जाकर सुवर्ण के पीठ पर विराजते हैं। फिर सुन्दरी गण आपके उचित शृंगार को उत्तम रीति से करती हैं, आप उनके शृंगार को प्रेम से ग्रहण करते हैं ॥१३३॥

सुघृष्टैश्चन्दनैश्चैव कुङ्कुमागरुमिश्रितैः।
कर्पूरै मृगमदैश्चैव सर्वाङ्गे परिलेपनम् ॥१३४॥

अर्थ—पुनः कुंकुम, अगरु, कर्पूर, कस्तूरी इन सबोंसे मिलाकर चन्दनको घिसकर उस अंग रागका सर्वाङ्गमें परि लेपन होताहै

सुगन्ध पुष्पमाल्यैश्च वेषकल्पनमुत्तमम्।
सीतयासहतद्वेषं कुर्य्याच्चैवसमुत्तमम् ॥१३५॥

अर्थ पुनः सुगन्धित पुष्पोंकी मालाओंसे आपके उत्तम शृङ्गार की कल्पना होती है अर्थात् ऋतु के अनुकूल फूलों का शृङ्गार होता है। इसी प्रकार प्रिय सखीगण सब श्रीमिथिलेश किशोरी जी का उत्तम षोड़श शृङ्गार करती हैं। वह षोड़श शृङ्गार इस तरह से है ॥ १३५ ॥

अथ षोड़श शृङ्गाराः

स्नानं नासाग्र मुक्तां च नील कौशेय वस्त्रकम्।
स्वर्ण सूत्रां दिव्य वेणीमंगरागानुरंजिताम् ॥१३६

अर्थ—स्नान और नासाग्र मुक्ता का धारण करना और नील रङ्ग की रेशमी सारी को धारण करना जिसमें सुवर्ण के सूत्रों की मनोहर चमकदार किनारी बनी है दिव्य वेणी का सँवारना और अंगराग से अनुरञ्जित करना ॥ १३६ ॥

काञ्ची गुण लसन्नीवीं मणि स्रगवतंसिकाम्।
कराग्रे धृतपद्मां च नागवल्ली दलान्चिताम् ॥१३७

अर्थ—सुवर्णकी मणिजटित काञ्ची अर्थात् छुद्र घण्टिका उसके मनोहर गुण से नीवी का अग्र भाग शोभित होता है और मणियों की माला तथा कर्णावतंस अर्थात् कर्णफूल आदि सबसे शृंगार होता है पुनः कर कमल में पद्म को धारण करती हैं और नाग वल्ली दल से युक्त होती हैं अर्थात् ताम्बूल को ग्रहण करतीहैं१३७

सिन्दूर विन्दु तिलकां कस्तूरी चिबुकांचिताम्।
अंजनेना रंजिताक्षीं वलयादि विभूषिताम्।१३८

अर्थ—सिन्दूर का विन्दु तिलक स्थान पर धारण करती हैं। कस्तूरी का अति सूक्ष्म विन्दु चिबुक के ऊपर धारण करती हैं जिससे आप अति शोभित होती हैं पुनः अंजन आदि से नेत्र कमल रंजित होते हैं और बलयादि अर्थात् चूड़ी आदि मणि रचित दिव्य भूषणों से कर कमल शोभित होते हैं ॥१३८॥

यावकैरक्तपादां, च सिंजन्मंजीर भूषणाम्।
शृङ्गार षोडश युतां सीतां ध्यायेद्धृदम्बुजे ॥१३९॥

अर्थ–फिर यावक अर्थात् महावर से आप के चरणकमल अति शोभित किये जाते हैं और सुन्दर मनोहर नूपुरादि मंजीर भूषणों से शोभित होती हैं। इस तरह षोडश शृङ्गारसे युक्त सर्वेश्वर श्री रामजी की वल्लभा श्रीजानकी जी को हृदय कमल में ध्यान करै

अर्द्धरात्रौ ततो रामो रास क्रीड़ांकरोति च ।
रास हास विलासेषु कुशलो रघुनायकः ॥ १४० ॥

अर्थ–फिर अर्द्धरात्रिमें श्रीरामजी षोड़श शृङ्गार युक्त श्रीजानकी जी और अनन्त सखियों को साथ में लेकर रास कुञ्जमें जाते हैं वहां पर अनेक तरह के रास क्रीड़ा को करके सब को सुख देते हुए स्वयं सुखी होते हैं, क्योंकि रास हास बिलासों में श्रीरघुनायक सर्व नायक शिरोमणि वड़ेकुशल हैं, इस लियेरघुनायक कहा१४०

सर्वेशः प्रतिभा युक्तः सीतारामस्पदो विभुः।
वादित्र कूज शब्देन कोकिलैश्चक्रवाक कैः॥१४१॥

अर्थ —इसका कारण यह है कि श्रीराम जी सर्वेश्वर हैं और

प्रतिभा से युक्त हैं। तात्पर्य्य यह कि अपनी अलौकिक प्रतिभा से नये नये क्रीड़ा भेदों को प्रगट करने वाले हैं तिस पर भी परम चातुर्य्यकी सींवाँ श्रीमिथिलेश नन्दिनीजी साथहैं इसीसे सीताराम स्पदो विभुः कहा। वह रास स्थली वाद्योंके मनोहर शब्दोंसे और कोकिला चक्रवाकादिके कूजित शब्दोंसे अति सोहावन होरही है

भ्रमरालि कुलै र्युक्ते पुष्प गन्धेनमादिते।

सारिकाभिर्मयूरैश्च कोकिलैरभिकूजिते॥ १४२ ॥

अर्थ—वह रास स्थली भ्रमर और अलि कुलों से युक्त है। श्री अग्रस्वामी जी के सम्मत से भ्रमर बड़े भवरों को और अलि शब्द से छोटी भ्रमरी को कहने का तात्पर्य्य है। ध्यान मंजरी में भी भृकुटी त्रय पद दुगुन मनहुं अलि अवलि विराजै" यहाँ पर भी भ्रमर और अलि दोनों कहा है। 'षटपद' शब्द भ्रमर का वोधक है। तात्पर्य्य यह कि वह (रास स्थली) पुष्प गन्धों से मादित है अर्थात् पुष्प गन्ध के झकोरों से भरी है, इसी से भ्रमर और अलि इन से पूर्ण है और शुक, सारिका, मयूर, कोकिलायें भी चारों तरफ सुरीली बाणी से कूजन कर रही हैं १४२

नाना पुष्प लता गुल्म संकीर्णैरुपशोभिते।

दिव्य पुष्पोप वनिके राज्ञो भवन सन्निधौ ॥१४३॥

अर्थ-और नाना रङ्ग के पुष्प लता गुल्मों से संकीर्ण है इस कारण से वह रास स्थल अति शोभित है, तिस पर यह अशोक वनिका है अतएव दिव्य पुष्पों से अति सोहावन हो रही है यह अशोक वनिका राजभवन के समीप ही है ॥१४३॥

तन्मध्ये मंडप स्तम्भ सहस्त्रैरुपशोभितम् ।
नाना प्रसून पर्यङ्के क्रीड़ा स्थानं महोज्वलम् ।१४४

अर्थ — इसी मध्य में मंडप है जो सहस्रों स्तम्भों से शोभित है उसी मंडप में नाना प्रकार के प्रसूनों से सजे हुए पर्य्यङ्क पर श्रीसीताराम जी विराजते हैं यह क्रीड़ा स्थान महा उज्वल है१४४

सीताराम विहारश्च सखी बृन्दैः सुवेष्टितम् ।
रास मंडल मध्ये च नृत्यते सखिभिस्सह ॥१४५॥

अर्थ—क्योंकि यह श्रीसीतारामजी का विहार स्थल है जो असंख्य सखि बृन्दों से वेष्टितहै, जहाँ पर राज कन्या, देव कन्या, नाग कन्या. गन्धर्व, किन्नरों की कन्या, गोप कन्या आदि शोभित होरहीहैं और उस रास मंडप के मध्य में चतुर चूड़ामणि श्रीरघुनन्दन जूका सखियों से शोभित नृत्य होता है इहाँ सखी शब्द ह्रस्व श्रीअग्रस्वामीजीके सम्मतसे छन्दानुरोधही जानना चाहिये

लसत्पादाब्ज युगलं नूपुर ध्वनि नादितम् ।
प्रेमानन्द महोल्लासं परस्परानुसारिणम् ॥१४६॥

अर्थ- उस नृत्य में दोनों चरणारविन्दों से शोभित नूपुर ध्वनि से नादित है और परमानन्द का महा उल्लास हो रहा है वह नृत्य परस्परा नुसारी है अर्थात् परस्परके इच्छा नुसारही होताहै

एवं विहरते रामोरामाराम मनोरमः ।
सौन्दर्य्य सौगन्ध्य सौकुमार्य्य लावण्यमेवच १४७

अर्थ-इस प्रकार से सब रामागण तथा श्री मिथिलेश किशोरी जी के मन को रमाने वाले श्रीराम जी विहार करते हैं और सौन्दर्य्य सौगन्ध्य सौकुमार्य्य और सुन्दर लावण्यादि गुणों से युक्त हैं श्लोकों में कहीं कम कहीं जादा अक्षर हैं ये इनके मत से उचित हैं इसी को आप कहते हैं ॥ १४७ ॥

यौवनाद्यनन्त कल्याण चातुर्य्यादि गुणार्णवः ।
सौहार्द साम्य कारुण्य माधुर्य्यौदार्य्य संश्रयः १४८

अर्थ-और भी यौवनादि अनन्त कल्याण गुण तथा चातुर्य्यादि के समुद्र हैं एवं सौहार्द साम्य, कारुण्य, माधुर्य्य, औदार्य्य इन गुणों के सम्यक् प्रकार से आश्रय भूत हैं अर्थात् ये गुण पूर्ण रूप से महाराज कुमार श्रीराम जी ही में नित्य एक रस रहतेहैं १४८

चतुर्दश रसा भोगी नागराणां शिरोमणिः ।
नाना वर्ण समायुक्ते मोदते वन कानने ॥१४९॥

अर्थ—और भी नव और पाँच इस तरह से चतुर्दश रसों के अच्छी तरह भोगने वाले श्री रामजी हैं अर्थात् सब रसों के आश्रय भूत हैं और जितने नागर चतुर नायक हैं उनके शिरोमणि हैं इस तरह नाना वर्ण समायुक्त मनोहर वन कानन में आप दिव्य क्रीड़ा से मोदित होते हैं । यद्यपि वन कानन एक ही है तथापि यहाँ वन शब्द से अशोक वाटिका प्रभृति प्रमोद वन आदि को जानना चाहिये और कानन शब्द से श्रीसरयू तट के मनोहर वृक्षों से शोभित वन को जानना चाहिये ॥ १४९ ॥

विलोकयन्ति विवुधा रास क्रीड़ां च तत्पराः ।
रत्न मंडप लीला कृद्रत्नालय निवास कृत् ॥१५०॥

अर्थ-इस सब बन स्थलों की रास क्रीड़ा आदि दिव्य चरित्रों को वही देख सकते हैं जो उनके चरणों में स्नेह से तत्पर विवुध हैं अर्थात् देव-स्वभाव-वाले हैं, तात्पर्य्य यह कि शुद्ध सात्विक स्वभाव वाले प्रेमीही इस रास क्रीड़ा के देखने के अधिकारी हैं। वैसे अनेक प्रकार की लीला करने वाले और रत्नों से रचित भवन निवास करने वाले श्री रामजी हैं ॥ १५० ॥

सरयू कूल रासस्थ कौतुकानेक रूपवान् ।
शयनागार गमनं चिंतयेच्च ततः परम् ॥१५१॥

अर्थ-श्रीसरयू जी के कूल में रास स्थली में स्थित होकर कौतुक से अनेक तरह के मनोहर रूपों को आप धारण करते हैं अर्थात् जिस लीला को करते हैं उसके अनुकूल वेष धारण करने से अनेक रूपवान् कहे जाते हैं। इसमें श्रीअग्रस्वामी जीने आपकी लीला की परम विचित्रता दिखलाई, जिससे साधक अपने भाव के अनुसार उस लीला की भावना कर सकै। इस रास लीला के वाद शयनागार को गमन करते हैं, यह चिन्तवन करै॥१५१॥

दिव्य रत्नैश्च घटितां पादुकाञ्च समर्पयेत् ।
दिव्य रत्न मये गेहे दिव्य चन्द्रिकयान्विते॥१५२॥

अर्थ—पुनः शयनागार के लिये चलते समय दिव्य रत्नों से रचित पादुका को साधक समर्पण करै। वहाँ पर शयनागार

दिव्य रत्न मय है और दिव्य चन्द्रिका से सदा ही युक्त रहता है

धूमैरगरुजैश्चैव वासिते माल्य शोभिते ।
तन्मध्ये दिव्य पर्यङ्के चिन्तयेत्साधकोत्तमः ।१५३।

अर्थ—पुनः वह शयनागार अगरु आदि सुगन्धित शुभ द्रव्यों के धूम से अति शोभित है और सुगन्धित फूल की मालावों से शोभित है, ऐसे दिव्य शयन भवन में, दिव्य पर्यङ्क के ऊपर श्रीराम जी शयन करते हैं । ऐसा उत्तम साधक चिन्तन करै १५३

अमूल्यरत्न निर्माणं मृदुशय्या समन्वितम् ।
उपधानैस्तूलिकाभीराजितं पुष्पवासितम् १५४

अर्थ-तथा अमूल्य रत्नोंसे उस शयनागारका निर्माण हुआहै और मृदुतर शय्यासे समन्वितहै एवं विविध प्रकारके उपधान तूलिका (शय्या) आदिसे शोभित है और सब ओर से फूलों की सुगन्धि से बासित है ॥ १५४ ॥

रत्नदीपितदीपैश्च शोभितं सुखदंशुभम् ।
सुवासितजलैस्तत्र ताम्बूलं सुविधं तथा ॥१५५॥

अर्थ-रत्नोंके साहाय्यसे विशेष प्रकाश करने वाले दीपोंसे शोभित है, अतएव सुखदहै और शुभहै । शयन के समय सुगन्धित जल और ताम्बूलादि सुन्दर विधान वाले पदार्थों से सज्जित है, ऐसी भावना करै ॥ १५५ ॥

कोमलं नारिकेलं च भक्ष्यं नाना रसान्वितम् ।
घृत पक्वादिकं स्वर्णपात्रे भोजनमुत्तमम् ॥१५६॥

अर्थ-ऐसेही कोमल नारिकेल तथा नाना रसोंसे युक्त भक्ष्य पदार्थ, घृत पक्कादिक उत्तम भोजन स्वर्ण के पात्र में धरा हुआ चिन्तवन करै ॥ १५६ ॥

सकर्पूरञ्च ताम्बूलं ततोदद्यात्प्रयत्नतः ।
कर्पूर पूर्ण ताम्बूलैः कल्पितं स्वर्णसंपुटम् ॥१५७॥

अर्थ-पुनः कर्पूरादि मसालोंसे युक्त ताम्बूलको प्रयत्नसे, शयन के समय, समर्पण करै और कर्पूरादि मसालोंसे पूर्ण ताम्बूल भरे हुए स्वर्णके सम्पुट अर्थात् पानदान का चिन्तवन करै ॥१५७॥

सखीभिरुपगच्छन्तं सीतयावंशभूषणम् ।
साधकः किंकरीभूत्वा द्वयोः सेवां प्रकल्पयेत् १५८

अर्थ-उस समय सखियोंके सहित जाते हुए रघुवंश भूषण श्री रघुनाथजी को श्रीमिथिलेश किशोरीजी के सहित चिन्तवन करै साधकको उचितहै कि किंकरी रूप होकर दोनों प्रभुवों की सेवा करना, यह चिन्तवन करै ॥ १५८ ॥

तथैवचिन्तनं दिव्यंसीतया विधिमुत्तमम् ।
शयने श्रीरघुपतेश्चिन्तनं प्रिययासमम् ॥ १५६ ॥

अर्थ-तथा यह चिन्तवन दिव्यहै कि श्रीजनकात्मजाजी प्रियाजू के सहित उत्तम विधिसे श्रीरघुपतिजीका चिन्तवनकरै, इसीलिये किंकरी भाव कहा ॥ १५६ ॥

पादसंवाहनं तत्र कुर्य्यात्साधकसत्तमः ।
अनुज्ञाप्य ततोधीमान् स्वयं स्वपितिदासवत् १६०

अर्थ-फिर श्रेष्ठ साधक प्रभुकी चरण-संवाहन-सेवाका चिन्तवन करे। फिर प्रभुको आलस्यमय जानकर उनकी आज्ञा से, आचार्यके बताये हुये, अपने कुञ्ज में दास के समान स्वयं बुद्धिमान् शयन करै ॥ १६० ॥

एवंहिचिंतयेद्यस्तु साधकोरामकिंकरः ।
नित्यकैंकर्यताम्प्राप्य तत्रैवनिवसेद्ध्रुवम् ॥१६१॥

अर्थ-जो साधक श्रीराम किंकर होकर, इसतरह के भाव से चिन्तवन करता है वह प्रभुके नित्य कैंकर्यताको प्राप्त होकर दिव्य धाम में, प्रभु की सेवा का सुख पाकर, प्रभुका समीपवर्ती होकर निवास करताहै, यह ध्रुवहै अर्थात् निश्चितहै, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १६१ ॥

य एवंकुरुतेनित्यं रघुनाथस्य भावनाम् ।
स दिव्यदेहमासाद्य सेवतेरघुनन्दनम् ॥ १६२ ॥

अर्थ-जो इस प्रकारसे श्रीरघुनाथजी की नित्य भावना करता है, वह दिव्य देह को प्राप्त होकर श्रीरघुनन्दनजी को सेवन कर सकता है ॥१६२॥

ततोनिशान्ते प्रदोषे स्नानादि वेष मुत्तमम् ।
अपराह्णे प्रातःकाले क्रीडाञ्च सरयूतटे ॥ १६३ ॥

अर्थ–पुनः निशान्त में और प्रदोष में स्नानादि उत्तम शृङ्गार होता है तथा प्रातःकाल और अपराह्न में श्रीसरयू तट में क्रीड़ा करते हैं॥ १६३ ॥

पूर्वाह्णे च तथा नक्तेपादसंवाहनंचरेत् ।
मध्याह्नकालेऽम्बरादीनि सायंदीपावलिं तथा१६४

अर्थ–पूर्वाह्ण में तथा रात्रि में साधक को चाहिये कि पाद-संवाहन अर्थात् चरण की सेवा करै मध्याह्नकाल में दिव्य वस्त्रों का समर्पण करै तथा सायंकाल में दीपावली का अवलोकन होता है॥ १६४॥

त्रिकालश्च भवेद्गुह्यं पञ्चकालानुसारतः ।
पञ्चकालंमयाप्रोक्तं सेवयेद्वैष्णवोत्तमः ॥ १६५ ॥

अर्थ–ऐसे तो त्रिकाल की सेवा एवं पंचकाल के अनुसार सेवा कही गई है । पंचकाल की सेवा का विधान हमने किया है । वैष्णवों में उत्तम इस प्रकार से सेवा करै ॥१६५॥

अन्तरंगाश्रितायैव इमं रसमनुत्तमम् ।
प्रकाशितमग्रदेवेन रघुनाथ कथामृतम् ॥ १६६ ॥

अर्थ–जो सेवक अंतरङ्ग की सेवा के आश्रित है, उन्हींके लिये यह अनुत्तम रस श्रीअग्रदेवजी ने प्रकाशित किया है । यह श्री रघुनाथजी की कथा को अमृत स्वरूप जानना चाहिये। अर्थात् जैसे समुद्र के मथने से अमृत निकला है, उसी तरह वेद रूपी

समुद्र में विचार रूपी मंदराचल को डालकर सन्तों ने इस कथामृत को निकाला है ॥ १६६ ॥

शान्त वात्सल्य दास्यञ्च सख्यमाधूर्यमुज्ज्वलम् ।
रसानि नादिताः पञ्चस्व-स्वभावानुसारतः ।१६७।

अर्थ-शान्त, वात्सल्य, दास्य, सख्य और माधुर्य उज्ज्वल, ये पंच रस शास्त्रों में कहे गये हैं। इनको अपने अपने भाव के अनुसार मन में धारण करै ॥ १६७ ॥

पञ्चाश्रयाः पञ्चसंस्कारयुक्ताः,
पञ्चार्थज्ञाः पञ्चमोपायनिष्ठाः ।
ते वर्णानां पञ्चमाश्चाश्रमाणांचविष्णो,
भक्ताः सकलगुणायुताः पञ्चकाल प्रपन्नाः १६८

अर्थ-पंचकाल अथवा त्रिकाल, इसकी सेवा करने वाले और पंच संस्कार से युक्त "अर्थ-पंचक" के जानने वाले, पंचमोपाय आचार्याभिमान में जिनकी निष्ठा है, ऐसे भगवान् के भक्त, वर्णों में और आश्रमों में पांचों कहे गये हैं, अर्थात् सब वर्णों से और आश्रमों से, उन्हें श्रेष्ठ समझना चाहिये। प्रायःप्रपन्न पंच-काल के सेवी होते हैं ॥ १६८ ॥

तापं पुंड्रं तथा नाम माला मंत्र तथैव च।

अमीहि पञ्चसंस्कारा: परमैकांति हेतव: ॥१७०॥

अर्थ—भगवान् के आयुधों का तप्तचिह्न लेना और ऊर्द्ध्व पुंड्र को धारण करना और भगवत् सम्बन्धी नाम, माला, एवं मंत्र को ग्रहण करना येही पंच संस्कार हैं ये परमैकांति के हेतु हैं। अर्थात् पंच संस्कार युक्त वैष्णव परमैकांती अनन्य भक्तकहेजातेहैं

धर्मार्थ काम मोक्षाणां सर्वेषां मूर्ध्नि राजते।

प्रेमैकलभ्या सा भक्तिर्वैष्णवै: क्रियते सदा १७१

अर्थ—इनके धारण करने से भगवान् की भक्ति होती है, जो भक्ति, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—सब फलों के ऊपर रहती है, वह भक्ति केवल प्रेम से प्राप्त होती है। ऐसी सर्वसाध्य मनोहर भक्ति को वैष्णव सदा करते हैं ॥ १७१ ॥

प्राप्यस्य ब्रह्मणो रूपं प्राप्तुश्च प्रत्यगात्मन:।

प्राप्त्युपायंफलं सम्यक् तथा प्राप्तेर्विरोधिन: १७२

अर्थ—अब 'अर्थ-पंचक' को अवश्य जानना चाहिये, इससे सूक्ष्मत: उनका वर्णन करते हैं। प्राप्य अर्थात् ब्रह्म के स्वरूपको